Chapter-4

अध्याय : चार : ऋषभचरण जैन के उपन्यास :

:: अध्याय : चार ::

:: ऋषभचरण जैन के उपन्यास ::

यद्यपि उपन्यास की गणना कथा-साहित्य के अन्तर्गत होती है , तथापि उपन्यास उस पुराने कथा-साहित्य से प्रवृत्ति और संस्कारों में भिन्न है । आधुनिक और पुराने कथा-साहित्य की स्थितियों में ही पर्याप्त अन्तर मिलता है । उस समय का सामाजिक ढांचा आज से अलग था , अतः सामाजिक सोच व चिंतन में भी बदलाव का होना स्वाभाविक ही समझा जायगा । उस पुराने कथा-साहित्य का परिवेश अधिकांशतः सामंत-कालीन प्रकार का (फ्यूडल) था । उसके केन्द्र में राजा-महाराजाओं की , राजकुमार-राजकुमारियों की , समाज के श्रेष्ठी-वर्ग की , परियों की , भूत-प्रेत की कहानियां हुआ करती थीं जिनमें एक तरफ तो सामंतकालीन चकाचौंध तथा दूसरी तरफ इन्द्रजालिक-चमत्कारिक वायवी परिवेश का समन्वय रहता था । गांव तब उत्पादक थे और नगर मार्केट । अब नगर उत्पादक है और गांव मार्केट । औद्योगिक क्रांति तथा नगरीकरण ने हमारे

सोच की दिशाओं को ही बदल दिया है । जीवन-मूल्यों में तेजी से बदलाव आ रहा है और यह बदलाव पहले के किसी भी युग की तुलना में अधिक क्षिप्रगामी है । इस नये युग की , नये समाज की , समाज के नये वर्गों की समस्याएँ भिन्न हैं और उसका आकलन इस नये कथा-साहित्य , उपन्यास-साहित्य के केन्द्र में है ।

उपन्यास हमें अपने वर्तमान जीवन से जोड़ता है । उपन्यास यदि ऐतिहासिक या पौराणिक परिवेश का हो तो भी उसमें अन्तर्निहित दृष्टि का आधुनिक जीवन से किसी-न-किसी प्रकार का तारतम्य अवश्य होता है । उपन्यास का व्युत्पत्तिगत अर्थ है — उप + न्यास । अर्थात् उपन्यास हमें जीवन के समीपस्थ करता है , क्योंकि "उप" का अर्थ होता है समीप और "न्यास" का अर्थ होता है रखना ।[1] अतः उपन्यास के केन्द्र में है मनुष्य — एक साधारण मनुष्य । पुराने कथा-साहित्य का नायक प्रायः उदात्त या अभिजातवर्गीय होता था , जबकि इस नये कथा-साहित्य के एक रूप - उपन्यास में कोई "होरी" , कोई "काली" , कोई "डूंगरसिंह" , कोई "हसनअली" , कोई "चंनुली", कोई "चम्पाकली" जैसे सामान्य मनुष्य भी उसके नायक या नायिका के रूप में आ सकते हैं ।[2]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने उपन्यास को आधुनिक युग का महाकाव्य कहा है ,[3] तो कदाचित उनका तात्पर्य यही है कि किसी युग में अपने युग के युगबोध को , उसकी सम्पूर्ण तासीर को , अभिव्यक्त करने का कार्य जो महाकाव्य द्वारा संपादित होता था , अब वह कार्य उपन्यास के द्वारा होता है । जैन का समय तो संक्रांति का है । समाज एक नयी करवट ले रहा था । आर्यसमाज , ब्रह्मोसमाज, प्रार्थनासमाज , थियोसोफिकल सोसायटी , गांधी , अरविंद , मार्क्स जैसे संस्थान तथा संस्थानवत् व्यक्तित्व समाज में पुनर्निमाण और पुनर्मूल्यांकन कार्य कर रहे थे । ऐसे समय में उपन्यास किसी भी चिंतक के लिए , विचारक के लिए , समाज-सुधारक के लिए एक प्रमुख उपादान हो सकता

है और ऋषभजी ने इस उपादान से यथेष्ट कार्य लिया है । प्रस्तुत अध्याय में हम उनके प्रमुख उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का उपक्रम रख रहे हैं ।

मयखाना :

ऋषभचरण जैन का अधिकांश लेखन प्रेमचन्दकाल (1918-36) तथा प्रेमचन्दोत्तरकाल में सन् 1938-39 तक सीमित है यह पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है । प्रेमचन्दकालीन औपन्यासिक साहित्य प्रायः सोद्देश्य हुआ करता है । ऋषभचरण जैन के उपन्यासों में प्रायः उच्चवर्गीय लोगों का खोखलापन आकलित हुआ है । उपन्यास केवल कथा मात्र नहीं है, अपितु उसके द्वारा लेखक समाज के कई प्रश्नों के रूबरू होता है और अपने पाठकों को भी करवाता है । इस अर्थ में उपन्यास की उपादेयता असंदिग्ध है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार " वर्तमान जगत में उपन्यासों की बड़ी शक्ति है । समाज जो रूप पकड़ रहा है, उसके विभिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियां उत्पन्न हो रही हैं, उपन्यास उनका विस्तृत प्रस्तुतीकरण ही नहीं करते ; आवश्यकतानुसार उनके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न कर सकते हैं । लोक या किसी जन-समाज के बीच काल की गति के अनुसार जो गूढ़ और चिन्त्य परिस्थितियां खड़ी होती हैं रहती हैं, उनके गोचर रूप को सामने लाना और कभी-कभी निस्तार का मार्ग भी प्रत्यक्ष करना उपन्यास का काम है । "[4]

इस दृष्टि से "मयखाना" उपन्यास उल्लेखनीय रहेगा क्योंकि उसमें लेखक ने उच्चवर्ग के खानदानी नबीरों में शराबनोशी की जो आदत पाई जाती है उसका न केवल वर्णन किया है, बल्कि उनके सत्यानाशी दुष्परिणामों को भी व्यंजित किया है । इसमें लेखक ने इस शराबनोशी की प्रवृत्ति की बड़े कड़े शब्दों में भर्त्सना की है ।

उपन्यास के प्रारंभ में ही लेखक अपनी प्रस्तावना में कहते हैं — " मनोरंजन के लिए शराब का जिस मात्रा और जिस रीति पर

प्रयोग किया जाता है , वह हमारे जीवन के प्रत्येक विभाग पर अत्यन्त घातक और विषैला प्रभाव उत्पन्न करता है । फलस्वरूप हमारे सामाजिक जीवन में से दिनों-दिन सच्चाई , सादगी , सच्चरित्रता और अन्य अच्छे गुणों का ह्रास होता जाता है । .... संसार भर में नैतिकता का जैसा घोर उपहास हो रहा है , उन सबके पीछे शराब का बहुत हद तक हाथ है और अगर संसार के प्राणियों के जीवन में से शराब का अस्तित्व लोप कर दिया जाय तो निःसंदेह दुनिया में अधिक शांति , सुव्यवस्था और संतोष का दौर-दौरा हो जाय । " [5]

यह उपन्यास आत्मकथनात्मक शैली में लिखा गया है । इसमें लेखक ने एक रंगीन मिजाज , रहमदिल पर ऐयाश ऐसे राजासाहब के जीवन को लिया है । वस्तुतः हमारे तत्कालीन राजा-महाराजाओं , जमींदारों , नवाबों और रईसजादों का वह उच्चवर्गीय समाज ही एक किस्म का "मयखाना" है जिसमें डूबकर लोग अपने होशो-हवाश खो बैठते हैं । उनकी अपनी कोई पहचान नहीं रहती । कदाचित् इसीलिए लेखक ने उपन्यास के नायक का नाम कहीं नहीं दिया है । उपन्यास के नायक राजासाहब कहते हैं — " मेरी उम्र पैंतालीस वर्ष की है और पूरे पच्चीस वर्ष से मैं ऐयाशी के दरिया में डूब-डूबकर गोता लगाये जा रहा हूं । मेरे बाप मुझे छोटा-सा छोड़कर मर गए थे और विरासत में इस हद तक रूपया और इस हद तक ऐब दे गए थे कि इस रूपये के ब्याज ही ब्याज में मेरी सारी उम्र रंगरेलियों और मौज-मजे में चलती रहसकती हैं ।" [6]

उपन्यास का नायक एक ऐसा व्यक्ति है जिसने ताज़िन्दगी ऐशो-आराम व ऐयाशी के अलावा कुछ नहीं किया । वह स्वयं कहता है — " यों मुझे हररोज एक बोतल व छोकरी की जरूरत पड़ती है , लेकिन मैं वह आदमी हूं जिसने जिन्दगीभर शादी नहीं की , सिर्फ इस खयाल से कि अपने ऐश में फरक डालना मुझे गवारा न था और एक बेकस लड़की की जिन्दगी को अज़ाब में डालना मेरी गैरत को मंजूर न हो सका । कहने को दुनिया मुझे ऐयाश , बदचलन , शराबी , कबाबी सबकुछ कहती है और इस नाचीज़ जिन्दगी में मैंने हजारों औरतों से

मुलाकात की है , लेकिन मैं तुम्हें यकीन दिलाता हूं कि मेरी तितली कि कभी किसी भले घर की बहू-बेटी पर डोरे डालने की मैंने कोशिश नहीं की । कभी बलात्कार नहीं किया और अगर उठती हुई किसी आत्मा को कभी नीचे गिराने की कोशिश नहीं की । "7

इसी प्रकार हम देख सकते हैं कि उपन्यास का नायक ऐयाश और शराबी होते हुए एक उदारमना , साफगो तबियत का व्यक्ति है । वह इन्द्रिय-लोलुप भी नहीं है । इस मामले में उसका अपने मन पर पूरा काबू है । उपन्यास में एक स्थान पर वह गुलबदन को कहता है - " तुम्हें यकीन दिलाने के लिए मैं वादा करता हूं कि सारी रात एक ही पलंग पर सोकर भी मैं तुमसे सोहबत न करूंगा और तुम यकीन मानो कि अगर तुम कोशिश भी करोगी तो मेरे इस इरादे को तोड़ न सकोगी । " 8

वादे के अनुसार वह दुबली-पतली खूबसूरत लड़की रातभर नायक के साथ एक पलंग पर सोती रही पर नायक है कि एक सीमा के बाद तनिक भी आगे न बढ़ा । इससे नायक की चरित्रगत सुदृढ़ता तथा भीतरी निर्मलता पर प्रकाश पड़ता है । वस्तुतः उपन्यास का नायक मूलभूत दृष्टि से बुरा व्यक्ति नहीं है , परन्तु परिवेश के प्रभाव, बुरी सोहबत तथा बेतहाशा दौलत के परिणामस्वरूप उसका चारित्रिक पतन हुआ है । शैशवकाल में ही मां की मृत्यु होने से मां की ममता क्या होती है उसका एहसास वह न कर सका । ममता के इस सागर से वह अछूता ही रहा । जिन बच्चों को मां का प्यार नसीब नहीं होता वे ज़िन्दगी की एक बहुत बड़ी नियामत से महरूम रह जाते हैं । बच्चे को सबसे ज्यादा लाड़-दुलार , प्यार की आवश्यकता शैशव-काल में रहती है । इस समय शिशु रूपर पौधे को प्रेम की तरी मिल जाती है तो उसका जीवन-वृक्ष गहरी जड़ें पकड़ते हुए ठोस और पुख्ता हो जाता है । शैशवावस्था में मां की यह कमी इतनी गहरी , इतनी तड़पाने वाली रहती है कि ज़िन्दगीभर एक टीस रह जाती है ।

प्रेमचन्द के उपन्यास "कर्मभूमि" का अमरकान्त इस टीस की अभिव्यक्ति एक स्थान पर करता है — " ज़िन्दगी की वह उम्र जब इन्सान को मुहब्बत की सबसे ज्यादा जरूरत होती है , बचपन है , उस वक्त पौदे को तरी मिल जाय तो ज़िन्दगी भर के लिए उसकी जड़ें मजबूत हो जाती हैं । उस वक्त ख़ुराक न पाकर उसकी ज़िन्दगी ख़ुश्क हो जाती है । मेरी मां का उसी जमाने में देहांत हुआ और तबसे मेरी रूह को ख़ुराक नहीं मिली , वही भूख मेरी ज़िन्दगी है । " [9] नायक की मां का निधन भी उसी अवस्था में हो गया था ।

नायक के पिता पुराने जमींदार थे । बेशुमार दौलत थी उनके पास । यदि पिता ने पुत्र के परिवेश , शिक्षा-दीक्षा आदि पर ध्यान दिया होता तो गनीमत होती । परन्तु बालक को नौकरों के सहारे छोड़ दिया गया । हररोज़ शाम को रंगीन महफिलें होतीं , शराब का दरिया बहता और नायक के पिता तथा उनके मित्र बाजारू औरतों के साथ गंदे फूहड़ मज़ाक और गंदी हरकतें करते । इसका प्रभाव छोटे कोमल मस्तिष्क पर कैसा पड़ सकता है ?

अतः उस रंगीन "शरबत" का अनुभव नायक को शैशव काल से ही हो जाता है । नौकर उसे बढ़ावा देते हैं , क्योंकि उसमें उनका भी स्वार्थ है । उसके पिता को उसकी इस सूरते-हाल का जब पता चलता है , तब बहुत देर हो चुकी थी । फिर भी उसके पिता एक वैभवशाली बोर्डिंग-स्कूल में उसको भर्ती करवा देते हैं जहां बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं और श्रीमन्तों के फ़रजन्द [औलाद] शिक्षा पाते थे । यहां लेखक ने ऐसे बोर्डिंग-स्कूलों में चोरी-छिपे चलने वाले व्यापारों का भी पर्दाफाश किया है । बोर्डिंग-स्कूल में यदि नायक को सही संगत मिलती तो उसके जीवन की राह बदल जाती , परन्तु जिस दौलत को दुनिया पागलों की तरह चाहती है , वही दौलत इंसान को कई बार गुमराह भी कर देती है ।

बोर्डिंग स्कूल में नायक का परिचय रमाकान्त नामक एक किशोर से होता है जो इस अवस्था में ही शराबनोशी और रण्डीबाजी में महारत हासिल कर चुका है । वह मर्यादा की तमाम सीमाओं को लांघ चुका है । वह शराब और रण्डी की व्यवस्था बोर्डिंग-स्कूल में ही कर देता है , पर एक दिन पकड़ा जाता है । तब उसके कारण ही नायक को भी बोर्डिंग स्कल छोड़कर भागना पड़ता है । कुछ दिन तो रमाकान्त के यहां शराब की महफिलों और औरतबाज़ी में गुजर जाते हैं , परन्तु अन्ततोगत्वा उसके पिता को उसके ऐसे चाल'चलन की सूचना मिल ही जाती है और तब वे उसे रमाकान्त के यहां से ले जाते हैं ।

घर आने पर नायक कुछ-कुछ राह पर आता है । यह वह दूसरा मोड़ है जहां नायक के जीवन को एक नयी राह मिल सकती थी । वह अपने जीवन को तराश-तलाश सकता था , परन्तु शराब की लत बुरी होती है । यह एक बार जिसके मुंह लग जाती है , जीवनपर्यन्त उसके साथ रहती है । व्यक्ति में यदि संकल्प बल न हो तो वह कभी भी ढरक सकता है । वस्तुतः नायक का दुर्भाग्य यह है कि उसे जीवन में कभी भी किसीका भी सच्चा , निःस्वार्थ , निर्व्याज प्रेम नहीं मिला । यदि ऐसा प्रेम मिलता तो उसके भीतर की सुचारुता पुष्प-रूप में प्रकट होती । परन्तु यहां ऐसा नहीं होता । फलतः नायक पुनः शराब की लत का शिकार हो जाता है ।

यहां कुछ नाबदारों से नायक का वास्ता आता है । शराबनोशी और रण्डीबाज़ी के लिए नायक दुगुनी-तिगुनी रकम के प्रोनोट देकर बेतहाशा पैसा कर्ज़ पर ~~उठा~~ उठाने लगता है । उसके पिताजी को तब पता चलता है जब लेनदारों के प्रकट तकाजे बढ़ने लगते हैं । शराबी होते हुए भी वे एक खानदानी व्यक्ति हैं , अतः वे सब प्रोनोट वालों के कर्ज़ की रकम चुका देते हैं । इस घटना से नायक ~~xxx~~ शर्मिन्दगी महसूस करता है , उसे अपने किए पर पश्चाताप होता है और इसलिए वह अपने पिता को वचन देता है कि आगे से वह कभी शराब को हाथ तक

नहीं लगायेगा , परन्तु दुर्भाग्यवश उसके पिता का कुछ समय के बाद निधन हो जाता है और उनकी अतुल संपत्ति का वह एक मात्र वारिस रह जाता है । नायक कुछ दिन तो अपने वादे पर अटल रहता है , परन्तु कुसंगति का दुष्चक्र उसे पुनः अपनी गिरफ्त में ले लेता है और वह ऐयाशी के महासागर में फिर से गोते खाने लगता है ।

उपन्यास की सम्पूर्ण कथा आत्मकथनात्मक ढंग से कही गई है । किन्हीं कारणों से गुलबदन नायक को दूसरी स्त्रियों से कुछ अलग लगती है । एक भावनात्मक क्षण में वह गुलबदन से [illegible] खुलने लगता है । गुलबदन निरंतर कुछ दिनों तक नायक के पास आती है और नायक से उसकी कहानी उसकी ही जुबानी सुनती है । उपन्यास के अन्त में इसी गुलबदन के कारण [illegible] नायक के जीवन में परिवर्तन आता है , ऐसा संकेत लेखक ने दिया है । नायक अपनी संपत्ति के एक अंश का प्रयोग मद्यनिषेध के लिए करने का संकल्प भी करता है ।

संक्षेप में प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने शराबनोशी के दुष्परिणामों को व्यंजित किया है । समाज के अधिकांश किस्सों में यह देखा गया है कि शराब ही व्यक्ति के अधःपतन का कारण बनती है । इस उपन्यास से एक पुरानी कहानी का स्मरण हो आता है । एक साधु किसी पहाड़ी पर स्थित एक देवस्थान की यात्रा पर जा रहा था । प्रथम पड़ाव पर उसने लोगों से भोजन मांगा । तब उसे कहा गया कि यदि वह थोड़ा-सा मांस ग्रहण करें तो बाद में उसे भोजन मिल सकता है । साधु को यह शर्त मंजूर नहीं थी , सो भूखे पेट ही वह आगे बढ़ता है । जब वह दूसरे पड़ाव पर पहुंचता है , तो उसे भोजन के बदले में स्त्री-सहवास के लिए कहा जाता है । वह इस शर्त को भी नकार जाता है । तीसरे और अंतिम पड़ाव पर उसके सामने शर्त रखी जाती है कि वह यदि थोड़ी-सी मदिरा ग्रहण करें तो उसे भोजन मिल सकता है । साधु सोचता है , थोड़ी-सी मदिरा में क्या है , आखिर हमारे ऋषि-मुनि भी तो सोमरस पीते थे । अतः वह मदिरापान करता है । थोड़ी

मदिरा लेने के उपरान्त उसे और लेने का मन होता है और फिर तो वह जाम पर जाम चढ़ाए जाता है । उसके पश्चात् वह मांसाहार भी ग्रहण करता है और स्त्री-सहवास के सुख को भी भोगता है । अभिप्राय यह कि शराब की लत में मनुष्य करणीय-अकरणीय के विवेक को भुलाकर चारित्रिक अधःपतन की ओर अग्रसरित हो जाता है । प्रस्तुत उपन्यास में इसी तथ्य को रेखांकित किया गया है । उपन्यास में आवश्यकतानुसार अरबी-फारसी के शब्दों का कुशलतापूर्वक प्रयोग किया गया है ।

हिज हाइनेस :

कुछ समय पूर्व दीवान जर्मनीदास नामक एक सज्जन ने भारत के देशी राज-रजवाड़ों के नरेशों पर और उनकी दैनिक जीवन-चर्या पर "महाराजा" और "महारानी" नामक दो पुस्तकें लिखी थीं जो तब " बेस्ट-सेलर्स " रही थीं । जहां उक्त पुस्तकों में अनेक राजाओं , महाराजाओं और रानियों की चर्चा संक्षेप में थी ; वहां ऋषभचरण जैन के "हिज हाइनेस " उपन्यास में आलमनगर राज्य की कुछ घटनाओं को केन्द्र में रखते हुए वहां के महाराजा के चरित्र को उद्घाटित किया गया है । यह पहले बताया जा चुका है कि "सचित्र दरबार" जैसी पत्रिकाओं के प्रकाशन के कारण लेखक को राजा-महाराजाओं के के जीवन को बहुत समीप से देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और यहां लेखक ने अपने उस अनुभव को काम में लगाया है ।

जहां प्रेमचन्द काल के अन्य लेखकों में निम्न और मध्यवर्ग के जीवन को चित्रित किया गया है , वहां प्रस्तुत उपन्यास में तत्कालीन राजा-महाराजाओं के वैभवी और विलासी जीवन को चित्रित करने का लेखक का प्रयास रहा है । इस प्रकार तत्कालीन समाज-दर्शन की एक छूटती कड़ी की आपूर्ति का प्रयत्न लेखक ने किया है । इस संदर्भ में स्वयं लेखक का कथन है — " समय की गति और भाग्य के विश्वासघात के कारण मुझे पिछले सुदीर्घ काल से भारत के देशी नरेशों और

उनके अमलों के सम्पर्क में आने का अवसर मिला । मैंने "देशी नरेश " नामक पदार्थ का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया और मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि देशी नरेश संसार का एक ऐसा आश्चर्य है , जो जितना नया है उतना ही पुराना है । नया इसलिए कि देशी नरेश की मनोवृत्ति नये आदमी के लिए एक अनोखी चीज़ है और पुराना इसलिए कि पिछले एक हजार वर्ष के पूंजीवाद के युग में इसी रूपरेखा और मनोवृत्ति के लोगों का संसार के हरेक देशों के इतिहास में उल्लेख मिलता रहा है और आज भी दुनिया का करीब-करीब हरेक मुल्क मानवता के इन नमूनों से भरा पड़ा है । अधिकार , पूंजी , आराम और अशिक्षा के सम्मिश्रण से जो चीज़ पैदा होती है , और जिसका उल्लेख सोलहवीं सदी के फ्रांस , उन्नीसवीं सदी के इंग्लैंड और बीसवीं सदी के अमेरिका के इतिहास में मिलता है । हमारे देशी नरेश उनके मिलते-जुलते रूप हैं । इन लोगों में उक्त चार दोषों के अतिरिक्त एक महादोष और मिला हुआ है — गुलामी । " 10

प्रस्तुत उपन्यास देशी नरेशों के चारित्रिक अधःपतन और उनकी विलासी प्रवृत्तियों को उद्घाटित करता है । इस उपन्यास में छः मुख्य पात्र हैं :- हिज हाइनेस , रानी त्रिपुरी , महारानी , भास्करदेव , दीवान बहादुर अमरदास और माणिक सरदार । ये छहों पात्र उपन्यास में बारी-बारी से अपनी कथा कहते हैं और आत्मकथन के ऐसे पांच दौर चलते हैं । अंतिम उपसंहार वाले प्रकरण में समग्र कथा को समेटने का कार्य लेखक ने किया है । इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास आत्मकथनात्मक और विवरणात्मक शैली-शिल्प का मिला-जुला रूप प्रस्तुत करता है । औपन्यासिक शिल्प की दृष्टि से उसमें एक अनूठापन है । बाद में इस शैली-शिल्प का प्रयोग नागार्जुन के उपन्यास "इमरतिया" में मिलता है । परन्तु वहां कथा के तीन पात्रों से अपनी-अपनी बात कहलवायी गई है । उसके बाद केन्द्र में एक पात्र को रखा गया है । उसके पश्चात् पहले वाले तीन पात्र विपरीत क्रम से आते हैं और एक बार पुनः अपनी बातों के दौर

को आगे बढ़ाते हैं । [11] प्रस्तुत उपन्यास में पात्रों का क्रम एक-सा ही रहता है -- हिज हाइनेस की xxxxx, आत्मकहानी , भास्करदेव की आत्मकहानी , माँ-महारानी की आत्मकहानी , दीवान बहादुर की आत्मकहानी , रानी त्रिपुरी की आत्मकहानी और माणिक सरदार की आत्मकहानी । आगे के दौरों की कथा भी इसी क्रम में आती है । इसी प्रकार हम देख सकते हैं कि आत्मकथनात्मक कथा-रीति की ही एक अन्य पद्धति -- पात्रात्मक पद्धति -- का इसमें लेखक ने सफलता के साथ निर्वाह किया है ।

लेखक के अनुसार " इस उपन्यास की रचना में न तो कला के नियमों का ध्यान रखा गया है और न ही किसी सुधार-भावना का ही ख्याल रखकर इसका निर्माण हुआ है । यह एक सीधा-सादा चित्र है , जिसमें भावनाओं को लापरवाही के साथ बिखेर दिया गया है । " [12]

डा. रामशोभितप्रसादसिंह ने अपनी अत्यंत संक्षिप्त आलोचना में कहा है कि " श्री. जैन का यह उपन्यास शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है , पर उन्होंने समाज की गंदगी का , यौन संबंधी समस्याओं का और इसी प्रकार की अन्य सामाजिक समस्याओं का चित्रण जिस सफाई से किया है , वह उल्लेखनीय है । " [13]

परंतु डा. रामशोभितप्रसाद सिंह के उक्त मत से सहजतया सहमत नहीं हुआ जा सकता , क्योंकि यह उपन्यास शिल्प की दृष्टि से ही अधिक महत्वपूर्ण है । इसमें लेखक ने जैसा कि पहले निर्दिष्ट किया गया है एक अनूठे नवीन शिल्प का प्रयोग किया है और प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों की शिल्प-विधि को देखते हुए उसे निस्संदेह एक नवतर प्रयोग कहा जायेगा । उपन्यास विशुद्ध रूप से आत्मकथनात्मक शैली में नहीं है । यदि केवल "हिज हाइनेस" (आलमनगर के महाराजा) ही अपनी कहानी कहते तो यह xxxxxx आत्मकथात्मक प्रकार की कथा-रीति में आता , परन्तु यहां तो आत्म-

कथनात्मक कथन-रीति की एक नयी तरह का सूत्रपात लेखक ने किया है, जिसे हम "पात्रात्मक" कह सकते हैं। यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि इस उपन्यास के बहुत साल बाद नागार्जुन ने इस कथन-रीति को "इमरतिया" उपन्यास में अंगीकृत किया है।

यह बात सही है कि प्रस्तुत उपन्यास में उच्चवर्ग या सामंती वर्ग की गंदगी तथा उनसे सम्बद्ध यौन-विकृतियों को लेखक ने उजागर किया है। आलमनगर के महाराजा एक विलासी और ऐयाश प्रकृति के व्यक्ति हैं। उनकी यौन भावना भी स्वस्थ नहीं कही जा सकती क्योंकि उपन्यास में कई स्थानों पर ऐसे उल्लेख मिलते हैं कि वे अनेक बार एकाधिक बाजारू स्त्रियों, वेश्याओं और नाचने-गाने वालियों को निर्वस्त्र कर देते थे। एक ही साथ अनेक स्त्रियों से यौन-संबंधों का आनंद लेने में ही उनकी मानसिक विकृतियों को संतुष्टि मिलती थी। एक बार जब रानी त्रिपुरी महाराजा के विलास-भवन में पहुंच जाती है तब वहां का दृश्य देखकर वह मारे शर्म से ज़मीन में गड़ जाती है।

मध्यकालीन युग के महाराजाओं की एक मनोविकृति यह भी होती थी कि वे स्वयं को गोपिकावल्लभ श्री कृष्ण समझते थे और उनकी तरह रास रचना अपना अधिकार समझते थे। फिलीप रासन द्वारा प्रणीत "इरोटिक आर्ट आफ इण्डिया" में ऐसे अनेक राजाओं के कई सचित्र वृतान्त दिए गए हैं, जिनमें से एक को यहां उदाहरण हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें राजस्थान की "कोटा स्टायल" को लिया गया है जो उन्नीसवीं शताब्दी में उपलब्ध होती थी। उसमें एक राजकुमार एक साथ पांच सुंदरियों के साथ विहार कर रहे हैं —

" द प्रिन्स एनजोयज फाइव आफ हिज वीमेन एट वंस, टु विथ हिज हेण्ड्स, टु विथ हिज ~~फ्रिंग्रस~~ फीट, एण्ड वन विथ हिज सेक्सुअल ओरगन. धीस मोटिफ वाज़ वेरी कोमन इन इण्डियन इरोटिक आर्ट फ्रोम एटलिस्ट द नाइन्थ सेंच्युरी ए.डी. एण्ड प्रोबेबली अर्लिअर. इट रिप्रेजेण्ट्स एन आइडियल सिच्युएशन इन द पोलिगेमस

रोयल हाउस होल्ड , इलुस्ट्रेटिंग समथिंग आफ वाट इज़ इम्प्लाइड बाय द डिस्क्रीप्शन आफ रावन्स हरेम कोटेड इन द इन्ट्रडॅक्शन. इन द कामसूत्र थीस इज काल्ड बुल एमोंग काउज़. " 14

परन्तु यहां आलमनगर के महाराजा जिन स्त्रियों के साथ यौन-लीला रचाते हैं , वे उनकी ब्याहता पत्नियां नहीं हैं । शैलेश मटियानी के "हौलदार" , "चिट्ठीरसैन " , " चौथी मुट्ठी" , " एक मूठ सरसों " प्रभृति उपन्यासों में स्वतंत्रता-पूर्व के कुमाऊं प्रदेश के जन-जीवन को चित्रित किया गया है । वहां के जन-जीवन में बहु-पत्नीत्व का रिवाज मिलता है , परन्तु उसके पीछे उनके सामाजिक एवं व्यावसायिक कारण हैं । कृषि के व्यावसाय में अधिक स्त्रियों से सहायता रहती है ।

भारतीय जन-जातियों में भी बहु-पत्नी-विवाह की प्रथा मिलती है । डा. राजीव लोचन शर्मा कृत "जनजाति जीवन और संस्कृति" नामक ग्रंथ में इस संदर्भ में कहा गया है — " यों बहुत सी आदिम जातियों के सामान्य लोगों की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं होती है कि वे एक से अधिक पत्नियों को रख सके ; इसलिए एक पत्नी से ही संतोष करते हैं , किन्तु उनके लिए प्रतिबन्ध नहीं होता है , क्योंकि उनके सरदार कई-कई पत्नियां रखते हैं । जनजातियों में स्त्रियां हाट और खेत का काम करती हैं , इसलिए भी कहीं-कहीं एक से अधिक पत्नियां रखते हैं । बहु-पत्नी प्रथा विशेषतः टोड़ा , गौड , बैगान , नागा , निषाद आदि जन-जातियों में पाई जाती है । " 15

परन्तु उपन्यास "हिज हाइनेस" के नायक महाराजा साहब की यौन-प्रवृत्तियां इस परिधि में भी नहीं आतीं , क्योंकि उन्हें तो नित्य-नवीन स्त्रियों के संग की आदत पड़ चुकी है । उनके अनेक मुलाजिमों का काम ही यही है कि वे राज्य तथा राज्य की

सीमाओं के बाहर से सुंदर से सुंदर युवतियों को मुहैया करके हिज हाइनेस की सेवा में प्रस्तुत करें । भास्करदेव हिज हाइनेस का एक ऐसा ही मुला- ज़िम है जो अत्यंत विश्वसनीय हैं । हिज हाइनेस की लीलाएं बढ़ती चली जाती हैं । फाहिशा औरतों के ठट्ठ के ठट्ठ उनके इर्दगिर्द जमा होने लगते हैं । उनके हाली-मवालियों ने उन्हें खुश रखने का यही एक तरीका ईजाद कर लिया था । औरत का उपहार ही सबसे ज्यादा महान उपहार समझा जाने लगा था । स्वयं हिज हाइनेस अपनी इस प्रवृत्ति के विषय में कहते हैं -- " कुछ बेचारे जो गरीब थे , बेवकूफ थे और बाहर की औरतों का इन्तज़ाम नहीं कर सकते थे उन्होंने धीरे-धीरे अपनी सगी- संबंधियों , बहनों , बेटियों , भतीजियों , भांजियों , सालियों , सलहजों और खुद अपनी बीबियों तक को मेरे सामने पेश करना शुरू कर दिया और उन बदनसीब बेचारियों को देखिये कि खुशी-खुशी मेरी आगोश में आकर अपना जन्म सार्थक करने के लिए तैयार होती थीं । जैसा कि मैंने ऊपर कहा मैं उनसे खेलता , उन्हें जैसे चाहता भोगता और बिखेरता और कोई न था जो मेरी हरकतों पर ऊंगली उठा सकता । मैं राजा जो था , लेकिन इन सबमें बहुत थोड़ी ऐसी सौभाग्यशालियां थीं जिनको एक बार से अधिक मेरी अंकशायिनी बनने का सौभाग्य मिला हो । इसीमें मेरा बड़प्पन था । सभी प्रांतों और सभी जातियों से मेरा वास्ता पड़ा लेकिन मेरठ की पहाड़नों के अतिरिक्त न तो पूना की मरेठिनें मेरे मन भाईं , न दिल्ली की मुसलमानीनें । बम्बई की गुजरातिनों से तो मुझे नफ़रत-सी हो गई थी । और एंग्लो- इण्डियन छोकरियों के मुतल्लिक यह संस्कार मेरे हृदय पर जड़ जमा चुके थे कि वे बीमारी के घर हैं । " 16

उपन्यास की कथा के केन्द्र में है हिज हाइनेस और उनके एक तरफ है रानी त्रिपुरी , मां-महारानी , भास्करदेव और दीवान बहादुर और दूसरी तरफ हैं माणिक सरदार । रानी त्रिपुरी महारानी हैं । विवाह के पूर्व एक-दो बार विदेश-यात्रा भी कर आयीं थीं । एक समा- रोह में आलम नगर के राजकुमार (हिज हाइनेस) से मुलाकात हुई । यह

मुलाकात सहेतुक थी । उसके बाद उन दोनों का विवाह हो गया । विवाह के पश्चात् कुछ दिन तो रानी त्रिपुरी के स्वर्गीय सुख में बीते, पर फिर कुछ ही दिनों में हिज हाइनेस ने अपने रंग दिखाने शुरू कर दिये । मां-महारानी और दीवान साहब ढाढस न बंधाते तो रानी त्रिपुरी कबकी आत्महत्या कर लेतीं । वह अपने पति को सही रास्ते पर लाने के लिए भरसक प्रयत्न करती हैं, परन्तु उसका कोई भी प्रयत्न कारगर सिद्ध नहीं होता । बल्कि हिज हाइनेस बम्बई की एक अभिनेत्री के प्रणय-राग में आकण्ठ डूबते जाते हैं । फलतः वे रानी की हत्या का एक षड्यंत्र भी रचते हैं । रानी को किसी तरह इसकी गंध आ जाती है और वह अपने पिता को बुला लेती है । श्वसुर के आगमन के कारण हिज हाइनेस रानी त्रिपुरी के साथ बुरा व्यवहार नहीं कर पाते । एक विश्वसनीय सेविका से रानी त्रिपुरी को महाराजा के कुछ सूत्रों का पता चलता रहता है ।

मां-महारानी हिज हाइनेस की माता हैं । उन्हें अपने पुत्र की दुश्चरित्रता का बड़ा दुःख है क्योंकि उनके पति एक प्रजा-वत्सल, उदार, विद्वान और समझदार राजवी थे । पुत्र को वह अपने अंकुश में रखना चाहती हैं, परन्तु उनके पति की मृत्यु के उपरांत ज्यादा लाड़-प्यार में वह बिगड़ जाता है । बाद में चाटुकारों की मण्डली उसे बुराइयों के महानद में बहा ले जाती है । मां-महारानी के प्रयत्न बेकार जाते हैं । बल्कि उन प्रयत्नों के कारण वह अपने पुत्र से बहुत दूर चली जाती हैं । पुत्र और माता में इतनी खाई पैदा हो जाती है कि उनकी गति-विधियों पर भी पाबंदी लगाई जाती है और वे एक तरह से अपने ही महल में नज़रकैद जैसी हो जाती हैं ।

हिज हाइनेस एक स्थान पर इस संबंध में कहते हैं — "मेरी एक मां है । निहायत नेकचलन, लेकिन निहायत बददिमाग और निहायत बेवकूफ़ । यूँ तो मेरी कई मां थीं, इस रिश्ते से कि वे सब मेरे पिता की स्त्रियां थीं । लेकिन असली मां एक ही है, जिसकी

MEHTA LIBRARY
S. University of Baroda

कोख से मैं पैदा हुआ । जिसने नौ महीने कई दिन मुझे पेट में रखा और जो महज़ इसी तुच्छ अनुग्रह के बल पर मुझे तमाम ज़िन्दगी की गुलामी मानने की गलती करती है । लेकिन मैं ऐसा नहीं मानता । मेरी राय में वह मेरी मां जरूर थी , तब तक जब तक मैं बच्चा था । अब मैं राजा हूं और अब वह मेरी प्रजा है । मुझे कोई इन्कार नहीं उसकी इज्जत करने में , लेकिन यह इज्जत इसलिए हरगीज़ नहीं हो सकती कि वह मेरी मां है । बल्कि महज़ इसलिए कि वह औरत है और मेरे पिता मरते वक्त उसकी जिम्मेदारी मुझ पर छोड़ गए थे । अगरचे वे बदबख्त बिलकुल उसका उल्टा समझती है । और यही कहती भी है । मैं तैयार हूं उसे सब तरह से सुखी रखने के लिए । उसके आराम के लिए , मोटरों और गाड़ियों का प्रबन्ध करने के लिए । लेकिन वह क्यूं उम्मीद करती है कि मैं उसी तरह बच्चा बनकर उसकी कड़ी निगाहों की कैद में अपने आपको पाबंद कर दूं , जिसकी आदत उसे पड़ गई है ? "[17]

अपने पुत्र की नालायकी और दुश्चरित्रता के कारण ही मां-महारानी को कई बार माणिक सरदार की अप्रिय बातें भी माननी पड़ती हैं , यह जानते हुए भी कि माणिक उसके पुत्र का विरोधी है । इससे भी मां-बेटे के बीच का अन्तर बढ़ता जाता है ।

दीवानबहादुर अमरदास हिज हाइनेस को सही रास्ते पर लाने के लिए कई प्रयत्न करते हैं , परन्तु वे न केवल इसमें असफल रहते हैं , अपितु कई बार अपमानित भी होते हैं । इस दीवानपद से त्याग-पत्र देने का विचार उन्हें कई बार आता है , परन्तु मां-महारानी का आग्रह तथा दिवंगत महाराजा की असीम कृपाओं का स्मरण उन्हें बांधे रखता है । हिज हाइनेस की स्वच्छंदता , विलासिता , ऐयाशी तथा राजकुल धर्म की मर्यादाओं का भंजन जैसी प्रवृत्तियों के कारण उन्हें भी मां-महारानी के साथ माणिक सरदार द्वारा तैयार किए गए कागजों पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं । फलतः उनको आलमनगर राज्य को छोड़ना पड़ता है । परंतु अंत में हिज हाइनेस की आंखें खुलती हैं तब

उनके ही मार्गदर्शन में राजनीतिक संकट को टालने का उपक्रम किया जाता है ।

रानी त्रिपुरी स्त्री जाति की असहायता और विवशता का प्रतीक है । तथाकथित अभिजात वर्ग की स्त्रियां बंदिनी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है । रानी त्रिपुरी के चरित्र को देखते हुए उसकी प्रतीति होती है । महाराजा की कुछंदी प्रवृत्तियों के कारण वह खून के घूंट पीकर रह जाती है क्योंकि उन्हें अपनी अबोध बालिका की चिन्ता खाए जा रही है — " मुझे मरने का कतई भय नहीं था , क्योंकि मैं तो खुद दिन-रात मौत की भीख मांगा करती थी , लेकिन अपनी फूल-सी सुकुमारी कन्या का मुंह देख-देख कर अभी तक जीती थी । मैं जानती थी कि मेरे बाद इस कन्या का कोई पुरशा हाल न रहेगा । और मैं मर गई तो उसे भी अल्प आयु में ही मौत के मुंह में पड़ जाने को लाचार होना पड़ेगा । " [18]

माणिक सरदार इस उपन्यास का सच्चा खलनायक है । हिज हाइनेस की अनेक प्रवृत्तियां घृणास्पद हैं , परन्तु उनकी इस स्थिति के लिए परिस्थितियां तथा परिवेश कम उत्तरदायी नहीं है । उनकी इन अच्छाइयों के कारण ही वे अन्ततोगत्वा यथार्थस्थिति का जायजा लेते हैं और विलासिता तथा राजनीतिक दलदल से बाहर निकल आने में कामयाब रहते हैं । भीतर से अच्छा आदमी यदि कुसंगत के कारण एकबारगी गलत रास्ते पर चल भी पड़ता है , परन्तु अन्ततः विवेक का पतवार उसे सदाशयता के किनारे पर ला देता है । परन्तु माणिक सरदार तो प्रकृत्या ही धूर्त , लंपट , प्रवंचक और षड़यन्त्रकारी है । आलमनगर के राज्य का वास्तविक अधिकारी वही है इस भ्रान्त धारणा के कारण वह भूतपूर्व महाराजा तथा वर्तमान हिज हाइनेस के खिलाफ़ अनेक षड़यन्त्र रचता रहता है । महाराजा तो कबका रूखसत कर देते परन्तु मां-महारानी के आग्रह के कारण वे ऐसा नहीं कर पाते । हिज हाइनेस के समय में तो माणिक की अराजक सत्ता मदांध

सांड की तरह सारी सीमाओं को लांघ जाती है । उसका बस चलता तो वह अंग्रेज सरकार से सांठ-गांठ करके सत्ता हथिया भी लेता , परन्तु अंग्रेजों की व्यापारी चतुर दृष्टि ने यह देख लिया था कि हिज हाइनेस जैसे लापरवाह और ऐयाश शासन में ही उनकी सत्ता का स्थायित्व अधिक सुरक्षित रह सकता है । माणिक सरदार जैसे चतुर षड़यन्त्रकारी लोग अंग्रेज सत्ता के खिलाफ़ कड़ी चुनौती भी बन सकते हैं । उन्हें सशक्त नहीं कमजोर शासक चाहिए था । फलतः माणिक सरदार की सारी चालाकियां नाकाम सिद्ध होती हैं और अन्त में उसकी हत्या एक राज-सेविका के द्वारा हो जाती है । इस राजसेविका की इज्जत को माणिक ने लूटा था और जो प्रतिशोध के लिए उचित मौके की प्रतीक्षा में थी ।

उपन्यास के अन्त में हिज हाइनेस का मोहभंग होता है । बम्बई की जिस फिल्म-अभिनेत्री को वे अपनी रानी बनाना चाहते थे वही उनको विष देने के कुचक्र में शामिल थी । यह उनकी उदारता ही है कि इस राज़ के खुल जाने पर भी वे उसे रूपये और गहनों-कपड़ों से मालामाल कर देते हैं । अन्त में उनकी आंख खुल जाती है । मां-महारानी की रहस्यमय स्थिति में मृत्यु होती है और महाराजा अपने कर्तव्यनिष्ठ और वफादार दीवान अमरदास पर राज्य का तमाम उत्तरदायित्व छोड़कर स्वयं वैराग्य धारण कर लेते हैं । अपनी प्रजा को उद्बोधित करते हुए उन्होंने भारत में भविष्य में आने वाले लोकतंत्र का संकेत भी दिया है । यथा -- " मैंने महसूस कर लिया कि धन वास्तव में अनर्थों की जड़ है । संसार में पूंजीवाद का बोलबोला है और इसी पूंजी के लिए सर्वत्र गरीबों का शोषण किया जा रहा है । मैंने अनुभव किया कि संसार का कल्याण इस पूंजीवाद के सर्वनाश से ही हो सकता है । संसार के जितने शासक , जितने डिक्टेटर और जितने भी सरदार सामंत जन्मसिद्ध अधिकारों की बात कहकर अपने आश्रितों को पशुवत जीवन बिताने पर मजबूर करते हैं , मेरी तुच्छ समझ में वे संसार को धोखा देते हैं । मुझे कहना चाहिए कि जिस प्रकार संसार में किसी समय ब्राह्मणों का आधिपत्य था और उन्होंने अपने स्वार्थ के लिए मनगढ़न्त

सामाजिक व्यवस्थाएं रच ली थीं , उसी प्रकार आज संसार पर वैश्यों — पूंजीवादियों — का प्रभुत्व है , जिनमें संसार के सभी वर्गों के पूंजीवादी शामिल हैं और उन्होंने अपनी गर्हित जरूरतों और सहूलियतों के मुताबिक व्यवस्थाएं गढ़ ली हैं । ..... मैं आपको बता देना चाहता हूं कि मैंने अपने राज्य से पूंजीवाद और उससे होने वाली समस्त समस्याओं का नाम मिटा देने वाली एक योजना पर दस्तखत कर दिए हैं । समय आयेगा , जब दुनिया भर में यह व्यवस्था जारी होगी और अपने इस तुच्छ जीवन में मैं वह समय देख सकूं या नहीं ; मेरी आत्मा जहां भी होगी , उस घड़ी तृप्ति-लाभ करेगी । मेरी योजना के अनुसार राज्य का स्वामी या शासक न मैं रहूंगा , न मेरा कोई वंशज , न संबंधी । मेरे राज्य की स्वामिनी आज से मेरी प्रजा होगी और मेरी प्रजा का सबसे योग्य व्यक्ति — जो प्रजा के बहुमत से चुना जायेगा — इस राज्य का शासक होगा । " 19

यहां यह तथ्य ध्यातव्य रहे कि इस उपन्यास का प्रणयन-काल सन् 1937 है और तभी ही लेखक ने आने वाले युग के संकेत को भांप लिया था और भविष्य में आने वाली लोकतंत्र की संकल्पना को पहले से ही आत्मसात् कर लिया था । इससे लेखक के गहरे युगबोध और उससे सम्बद्ध समझ उजागर होती है ।

तीन इक्के :

उपन्यास के मुखपृष्ठ से ही ज्ञात होता है कि यह उपन्यास जुए की बदी को लेकर लिखा गया है । ऋषभचरण जैन के उपन्यासों में प्राय: हमारे उच्चवर्गीय जीवन में परिव्याप्त बुराइयों को रेखांकित किया गया है । इसके पीछे लेखक का आशय इस वर्ग-विशेष की बुराइयों और उसके बुरे परिणामों को निर्देशित करते हुए अन्य लोगों को आगाह करने का है , ताकि वे उनसे बच सकें । तभी तो उपन्यास की भूमिका में वे लिखते हैं — " हमारा प्रस्ताव है कि हिन्दुस्तान में घुड़-दौड़ , फाटकेबाजी , ताशों का जुआ , कौड़ियों का जुआ ,

लोटरीबाजी , सभी कानून के द्वारा बंद किए जाये । " [20] परन्तु यह भी एक विडम्बना ही है कि इनमें से लोटरी के जुए को तो हमारी वर्तमान सरकार ने कानून का ही रूप दे दिया है ।

उपन्यास की भूमिका में लेखक प्रास्ताविक रूप से बताते हैं -- " हमने समाज में सभी तरह के जुआरियों के दर्शन किए हैं और सभी की मनोवृत्ति के अध्ययन का यत्न भी किया है । हमने पाया कि जुए की लत आदमी की ऊंची भावनाओं को तो जिबह कर ही डालती है , आदमी को लालची , खुदगर्ज , कमीना और बेईमान भी बना देती है । इसके साथ हमने यह भी पाया कि अक्सर जुआरी या तो दूसरे-दूसरे व्यसनों से "ट्रान्सफर " होकर इस लत के शिकार होते हैं । हमने महसूस किया कि दुनिया के मुख्य व्यसन -- शराब , रण्डी और जुआ -- इस तरह एक दूसरे से सम्बद्ध हैं कि जो प्राणी तीनों में से एक का शिकार हुआ कि धीरे-धीरे दूसरे दोनों व्यसन भी उसके सर पर अज्ञात भाव से आकर सवार हो जाते हैं । हमने महसूस किया कि गुनाह की लंका के ये तीनों राक्षस , एक-दूसरे के साथ इतना गहरा संबंध स्थापित किए हुए हैं कि जो अभागा प्राणी तीनों से किसी एक के संपर्क में आता है , वह खुद उसे खा-पीकर अपने दूसरे दोनों भाइयों के हवाले कर देता है । और आदमी अक्सर इन लतों में पड़कर अपना लोक और परलोक बिगाड़ देता है । " [21]

मुरारीलाल दिल्ली के प्रसिद्ध सेठ रायबहादुर श्यामलाल का इकलौता पुत्र है । श्यामलाल का लेन-देन का व्यवसाय है और पुरखों की पूंजी तथा जी का जेवड़ा करते हुए उन्होंने अपने व्यवसाय को खूब विकसित किया था । श्यामलालजी का समाज के उच्च तबकों में एक निश्चित स्थान था । अपने व्यवसाय की व्यस्तता तथा भलमनसाहत के कारण बेटे मुरारीलाल पर ज्यादा ध्यान नहीं दे पाते थे । संपत्ति कई बार कुछ अतिरिक्त बुराइयों को न्यौता देती है । मुरारीलाल के साथ भी यही होता है । संपत्ति का पारावार तथा मां-बाप के झूठे

लाड़-दुलार उसे कुसंगत में डाल देते हैं । उपन्यास के प्रारंभ में जुए के अड्डे पर पुलिस की रेड का प्रसंग आया है । इस अड्डे पर कई दिनों से जुए की ॠ "फड़" जमी थी । मुरारीलाल इस "फड़" में प्रथमबार सम्मिलित हुआ था । कुछ ही दिनों में वह चार-पांच हजार रूपया हार चुका था और करीब-करीब उतने ही रूपयों के प्रोनोट भी दे चुका था । जबकई दिनों तक मुरारीलाल घर नहीं जाता तब घरवालों को चिन्ता तो बहुत होती है , परन्तु परिवार की इज्जत का ख्याल करके पुलिस में खबर नहीं दी जाती । परन्तु जब मुरारीलाल जुए की "फड़" पर पकड़ा जाता है , तब रायबहादुर श्यामलाल , मुरारीलाल की मां तथा उसकी पत्नी को बहुत दुःख पहुंचता है । मुरारीलाल की जमानत तो हो जाती है , परन्तु परिवार की इज्जत को ठेस पहुंचती है । पुलिस की हिरासत से जब मुरारीलाल घर आता है तब उसे समझाते हुए रायबहादुर श्यामलाल कहते हैं -- " हमारे खानदान में कभी किसीने जुआ नहीं खेला । मुनासिब है कि तुम भी उन्हीं के चरण-चिह्नों पर चलो । तुम अब बीस पार कर चुके , बराबर के हुए , तुम्हें अब अपने रोजगार की तरफ ध्यान देना चाहिए । मैं बूढ़ा हुआ , न जाने कब चल बसूं । " [22]

जुए की फड़ से पकड़े जाने के बाद मुरारीलाल को माता-पिता से खूब हिदायतें मिलती हैं । मुरारीलाल की पत्नी जमना गौनेवाली थी । अभी शर्म का पर्दा पूरी तरह से हट नहीं पाया था । उसके संस्कार थे कि पति को देवता मानती थी , लेकिन पति के ठौर पर कुछ और ही पाकर उसके दुःख का पारावार नहीं रहा । पूरे छः दिन तक पति रूपोश रहा । अतः फूट-फूट कर रोते हुए पति से पूछा -- "अब तो नहीं खेलोगे ? " [23] और मुरारीलाल पत्नी के सम्मुख कसम खाता है कि भविष्य में वह कभी जुआ नहीं खेलेगा ।

लेकिन मुरारीलाल इन वादों को कभी पूरा नहीं कर सके । जब कोई ऐसी घटना होती , थोड़े समय के लिए विरक्त हो जाते ,

परन्तु कुछ दिनों के बाद वही ढाक के तीन पात वाली कहावत चरितार्थ होने लगती । माता-पिता और पत्नी के प्रेम तथा इसरार से कदाचित् मुरारीलाल सही रास्ते पर आ भी जाते , परन्तु मुरारीलाल को दयाशंकर घुन की तरह लगा हुआ है । वह मुरारीलाल के व्यक्तित्व को दीमक की तरह चाट जाता है । जब भी मुरारीलाल की सद्वृत्तियां और संस्कार उसे जीवन के उजले पक्षों की तरफ ले जाने का प्रयास करते , दयाशंकर राहू-केतु की तरह उनके जीवन में प्रकट होकर उसे ग्रस लेता है । पहली बार तो मुरारीलाल को ऊंची सोसायटी और रुतबे की बात करके अपने पक्ष में मिलाने का यत्न करता है । यथा -
"मैं बात यह है कि लोग शराब भी पीते हैं , तमाशबीनी भी करते हैं , जुआ भी खेलते हैं और फिर भी किसीको कानोंकान खबर नहीं होती । और लोग सच पूछो तो कुछ भी नहीं करते और बदनाम हो जाते हैं । .... मिसाल के तौर पर अंग्रेजों को ही ले लो । सभी कुछ करते हैं लेकिन क्या मजाल कि किसीको ऊंगली उठाने का भी मौका मिल जाय । ... वे लोग सारा काम एक हद तक में , एक तरीके पर , एक ढंग से करते हैं । अगर उनकी हद एक पैग की है , तो चाहे रात के दो बजे तक बैठे रहें , एक पैग से आगे नहीं बढ़ेंगे । अगर उन्होंने ताश खेलना शुरू किया तो हद से हद दो-चार रूपये की हार-जीत में खेल खतम कर देंगे । और तमाशबीनी ? वह भी इतने बढ़िया ढंग पर होती हैं कि तुम देखा करो । जिन औरतों को तफरीह के लिए बुलाया जाता है , वे सब बासलिका , बातहज़ीब होती हैं और उनके साथ मिलने में , बोलने में , बैठने में हर तरह का लुत्फ़ मिलता है , और क्या मजाल कि ज़रा भी शोहदापन आ जावे ।" [24]

इस प्रकार अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों से दयाशंकर मुरारीलाल को पुनः एक क्लब में ले जाता है । जहां मुरारीलाल पहली बार शराब को चखता है । दयाशंकर का यह चक्कर कुछ दिन तो चलता है , परन्तु एक दिन मुरारीलाल बारह बजे तक नहीं लौटता

और उनके घरवाले परेशान हो उठते हैं । रायसाहब खूब चिंतित होते हैं और अपने नौकर गनपत के साथ उसे ढूंढने भी निकलते हैं कि इतने में मुरारीलाल शराब में झूमता हुआ लौटता है । बुजुर्ग नौकर गनपत की हिदायत पर रायसाहब उस समय कुछ भी नहीं कहते । मुरारीलाल की पत्नी अपने पति की चढ़ी हुई नज़रों को देखकर सन्न रह जाती है और तब फिर मुरारीलाल कुछ दिनों तक अपने घर में ही रहता है ।

अब दयाशंकर एक नया चक्कर चलाता है । गांधीवादी लिबास में आ जाता है और धीरे-धीरे यह बात प्रचारित की जाती है कि मुरारीलाल में एक आमूल परिवर्तन आ रहा है । वह क्रमशः आध्यात्मिकता की ओर जा रहा है ऐसा सिद्ध करने का प्रयत्न होता है । इसके लिए हीरादास नामक एक गुरु को साधा जाता है । यह हीरादास एक अव्वल नंबर का नशेबाज़ और गंजेड़ी है । धर्म की आड़ लेकर वह खूब खेलता है । जंगल में उसके अखाड़े के पास जुए की "फड़" जमती है । शराब के स्थान पर भांग, चरस और गांजे की बोलबोला होने लगती है । मुरारीलाल की आँखें लाल हो जाती हैं तो दयाशंकर उसे योगसाधना का परिणाम बताता है । मुरारीलाल की मां को यह बताया जाता है कि वह वशीकरण की सिद्धि में आजकल लगा हुआ है । मुरारीलाल के इस तथाकथित सत्संग से घर-परिवार वाले प्रसन्न हो जाते हैं, परन्तु उसकी पत्नी जमना चुप्पी साध लेती है क्योंकि उसे वस्तुस्थिति का यथार्थ ज्ञान हो गया था । मुरारीलाल की माताजी भी बाबा हीरादास के दर्शन से प्रसन्न हो जाती है । महन्त हीरादास के अखाड़े में जुए की जो "फड़" जमती है, उसमें एक सज्जन जुए के तीन फायदे बताते हैं । यथा —" /1/ पहला लाभ तो यह है कि दुनिया में जितने तरह के शौक़ और तफरीह के जरिये हैं उन सबमें जुआ ही एक ऐसी तफ़रीह है, जिसमें खर्च किया हुआ तमाम रूपया अपने ही मुल्क में रहता है । /2/ दूसरा लाभ यह है कि जुए में अक्सर बड़े आदमी हारते हैं और इससे उनका रूपया गरीब आदमियों में बंट जाता है और दौलत का "रोटेशन" सोसायटी के हर तबके में

हो जाता है । इसीका नाम तो " सोसियालिज्म " है, जिसकी तारीफ़ करते-करते हमारे लीडर थकते नहीं । ✗3/ तीसरा लाभ है संगठन का । यानि आज देख लीजिए कि यह शिवाला हिन्दुओं का है, लेकिन यहां मुसलमान भाई भी बैठे हैं जो घण्टों से यहां बैठे हमारी तफ़रीह में सिरकत कर रहे हैं । वर्ना जनाब शिवाले-मस्जिद की समस्या रोज़ हिन्दू-मुस्लिम के गले कटवाती है । मतलब यह हुआ कि जुए की तफ़रीह में आदमी-आदमी की मोहब्बत इस कदर बढ़ जाती है कि उन्हें इस बात का ख्याल ही नहीं रहता कि किसका क्या मज़हब है ? " [25]

परन्तु कुछ ही दिनों बाद बाबाजी की " फड़ " को पुलिस द्वारा पकड़ लिया जाता है । मुरारीलाल पुनः पकड़े जाते हैं । सेठानी बहुत दुःखी होती हैं । जमना तो सुनकर बेहोश हो जाती है । ~~xxxxx~~ मुरारीलाल के इस हाल से परिवार की जो बेइज्जती हो रही थी उसे रायबहादुर बरदाश्त नहीं कर पाये और उनका प्राण पखेरू उड़ गया । पिताजी की मृत्यु से मुरारीलाल को दुःख तो होता है, परन्तु कुछ ही दिनों में दयाशंकर जैसे लोग पुनः मंडराने लगते हैं और मुरारीलाल का दुःख व पछतावा स्मशान-वैराग्य भांति छू-मंतर हो जाता है ।

अब तो मुरारीलाल रायबहादुर की बेशुमार दौलत के एक मात्र वारिस हो गये हैं और परिवार में भी उनका रूतबा बढ़ गया है । वे थोड़े दिन तो कारोबार में ध्यान लगाते हैं, परन्तु कारोबार की निरसता से वे कुछ ही दिनों में उकता जाते हैं और मन ही मन तफ़रीह के विचार उनके भीतर कुलबुलाने लगते हैं । इसी बीच में दयाशंकर का एक चिरौरी भरा पत्र मुरारीलाल को मिलता है । इस पत्र से मुरारी-लाल पुनः दयाशंकर की ओर झुकते हैं और व्यवसाय की यात्रा के बहाने मेरठ आदि शहरों में दयाशंकर के साथ चक्कर काटते रहते हैं । इस बीच में उनको घुड़-दौड़ और रण्डीबाज़ी का एक नया चस्का लग जाता है । इस चक्र में एक दिन एक ठेकेदार के हाथों दयाशंकर का खून हो जाता है । मुरारीलाल भी मौका-ए-वारदात पर उपस्थित पाए गए ।

पुलिस और अफसरों को क्या चाहिए ? उन्हें तो मुरारीलाल से रूपये ऐंठने का अच्छा बहाना मिल गया । फलतः उनके हजारों रूपये इसमें स्वाहा हो गये । मुकदमे के कारण दिल्ली और मेरठ में हंगामा मच गया और इसमें मुरारीलाल का व्यवसाय भी चौपट हो गया । ताश-कौड़ियों के जुए तथा घुड़दौड़ ×××× मुरारीलाल को खतरा दिखने लगा तो दोस्तों की रायशुमारी से उसने फटकाबाजी शुरू की । बुढ़िया मां मुरारीलाल की इन हरकतों से दम तोड़ देती है । जमना के विरोध की अब वे कोई परवाह न करते थे । फलतः एक दिन सारी हश्मत और दौलत मय हाट-हवेली के साफ हो जाती है ।

उपन्यास के अन्त में हम पाते हैं कि मुरारीलाल अपनी गरीब बेचारी पत्नी जमना ×××××× और दर्जन भर बच्चों के साथ दिल्ली की एक गली में छः रूपये के किराये के मकान में रह रहे हैं और खाने के नाम पर फाके चल रहे हैं । जमना इस गरीबी में भी खुश रह लेती यदि मुरारीलाल की वह बुरी लत छूट जाती , परन्तु मुरारीलाल आज भी इस उम्मीद में है कि कभी अच्छा वक्त आयेगा तो " एक ही दाव में उसे फिर वही हश्मत और हाट-हवेली नसीब हो जायेगी । "[26] लेकिन क्या उसकी आशा पूर्ण होगी ? इस प्रश्न के साथ ही उपन्यास का अन्त हो जाता है ।

उपन्यास का शीर्षक " तीन इक्के " रखा गया है , इससे इस बात का संकेत तो मिल जाता है कि उसके कथ्य का संबंध जुए से होगा । परन्तु उपन्यास में मुरारीलाल के चारित्रिक पतन के तीन प्रसंग रेखांकित हुए हैं । प्रत्येक बार जब मुरारीलाल सुधरना चाहता है तब दयाशंकर जैसे चाटुकार लोग कोई न कोई युक्ति-प्रयुक्ति द्वारा उसे पुनः अपने चक्रव्यूह में फंसा देते हैं । दयाशंकर द्वारा प्रयुक्त इन तीन युक्तियों को तीन इक्के के प्रतीक के रूप में लिया जा सकता है । जैसे तीन इक्कों के सामने ताश के दूसरे पत्तों का महत्व नहीं रहता , उसी प्रकार प्रत्येक बार दयाशंकर कोई ऐसी चाल चलता है जिसके सामने मुरारीलाल तथा मुरारीलाल के परिवार वाले नतमस्तक हो जाते हैं ।

हर हाइनेस :

"हिज हाइनेस " की भांति यह उपन्यास भी अंग्रेजशासनकालीन सामंतीय जीवन को उद्घाटित करता है । अंग्रेजों के शासन में भारतीय राजा-नरेशों में जो विलासिता , जो ऐयाशी , चारित्रिक पतन इत्यादि दृष्टिगत होते हैं उनका यथार्थ चित्रण ऋषभचरण जैन के उपन्यासों में मिलता है । जहां प्रेमचन्द के उपन्यासों में तत्कालीन व्यवस्था के परिणामस्वरूप विषम और विसंगत समाज का यथार्थ चित्रण मिलता है , वहां आलोच्य लेखक में उस व्यवस्था के उत्पादक कारकों की चर्चा तथा उसके लिए कारणभूत सामंती जीवन व्यवस्था का यथार्थ चित्रण उपलब्ध होता है । डा. मोहनलाल रत्नाकर ने ऋषभजी के उपन्यासों के सन्दर्भ में लिखा है — " ऋषभचरण जैन ने मुख्य रूप से सामाजिक विकृत्तियों , असंगतियों और अभिशापों का चित्रण करने के लिए उपन्यास लिखे हैं । इनके कुछ उपन्यासों पर प्रेमचन्द के दृष्टिकोण और शिल्प-विधि का प्रभाव लक्षित होता है , किन्तु अधिकांश उपन्यासों में उग्र के घोर यथार्थवादी दृष्टिकोण से और शैली से वे प्रभावित हुए हैं । "[27]

डा. रामशोभितप्रसाद सिंह ने इस उपन्यास की आलोचना करते हुए लिखा है — " "हर हाइनेस " में भारतीय नरेशों की विलासिता का चित्र उपस्थित किया गया है , जो हीरे धारण करते हैं , रेशम पहनते हैं और दूध के कुल्ले करते हैं । "[28] डा. सिंह ने मुहावरे की शैली में बात की है , परन्तु उसे यदि ~~शब्दशः~~ शब्दशः यथार्थ की भाषा में कहा जाय तो वे विदेशी शराब के कुल्ले करते हैं ऐसा कह सकते हैं ।

" हर हाइनेस " उपन्यास देशी नरेशों तथा उनकी रानियों और रक्षिताओं (रखैलों) के जीवन को रूपायित करता है । उपन्यास का प्रारंभ "हर हाइनेस " तथा उनके एक वफादार साथी साकी के वार्तालाप से होता है । उनकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है । होटल

के बिल को चुकाने के भी पैसे नहीं है , क्योंकि पिछले कई वर्षों से हिज हाइनेस ने उनको छोड़ रखा है । इस असहाय अवस्था में उनको साक़ी का ही सहारा है । जो नौकर होने के साथ-साथ अब उनका साथी भी बन गया है । पुराने वस्त्रालंकार तथा संचित संपत्ति खत्म हो चुकी है और गुज़र-बसर मुश्किल हो गई है । उस पर कीमती शराब और खाना । साक़ी हर हाइनेस का नेकलेस दो हज़ार रूपयों में बेच आता है और जैसे-तैसे होटल का बिल चुकाकर शिमला के लिए निकल पड़ते हैं । रेल की यात्रा भी बिना टिकट करते हैं । रास्ते में एक समशेर सिंह नामक पंजाबी रईस से उनकी मुलाकात होती है जो धीरे-धीरे प्रेम में परिवर्तित हो जाती है । समशेर सिंह हर हाइनेस की आर्थिक चिन्ताओं को तो दूर करता ही है , प्रत्युत अपने राजकीय सूत्रों का उपयोग करके हर हाइनेस को हिज हाइनेस से उनके खर्च के रूप में उनको नियमित रूप से कुछ मिलता रहे ऐसी व्यवस्था करवाने में सफल रहता है । हिज हाइनेस समशेर सिंह द्वारा भेजे गये उसके एजण्ट की धौंस में आकर दस हज़ार रूपये का एक चैक भी हर हाइनेस के नाम काट देते हैं ।

समशेरसिंह के साथ-सहयोग से हर हाइनेस का जीवन सुख व आराम से व्यतीत होता , किन्तु साक़ी हर हाइनेस की समशेर सिंह से बढ़ती हुई अंतरंगता बरदाश्त नहीं कर सकता क्योंकि इतने दिनों में वह उन्हें तहेदिल से चाहने लगा है । एक स्थान पर वह स्वयं कहता है — " मैं आपको चाहता हूं हुज़ूर साहेब और इस-लिए एक लम्बी मुद्दत से घर-बार , औरत , बच्चे सभी को छोड़-कर आपके साथ मारा-मारा फिर रहा हूं । मैं जानता था कि आप मुसीबत में हैं , लेकिन मैं आपको भूखा कभी नहीं रहने देता । मैं यह भी जानता है था कि आप महारानी हैं और गरीबी की ज़िन्दगी बिताना गवारा नहीं कर सकती , लेकिन इसका इन्तज़ाम भी मैंने सोच लिया था और आपको हर तरह खुश रखता । खुद मिट जाता लेकिन आपकी जरूरतें पूरी करता । मगर ... मगर ...

अपने रास्ते के इस कांटे को गवारा नहीं कर सकता था । इस आदमी ने आपको पिछले कुछ दिनों में इस कदर से ढंक लिया था कि आप मेरी आंखों से ओझल हो गईं । मैं यह हरगिज़ बर्दाश्त न कर सकता था । " 29

फलतः साक़ी समशेरसिंह की गोली मारकर हत्या कर देता है । इस घटना से हर हाइनेस के दुःख और यन्त्रणा का सिलसिला पुनः शुरू हो जाता है । दस हजार का चैक किसी तरह पांच हजार में भुनाकर वे दोनों पहाड़ी रास्ते से पहाड़ी नौकरों को बदलते हुए पुलिस की आंखों में धूल जोंक कर हिमालय के जंगलों में खो जाते हैं । मूल्यवान वस्त्राभूषण के स्थान पर हर हाइनेस को मामूली पहाड़ी पट्टुओं का लिबादा पहनना पड़ता है । तराई में एक झोंपड़ा बनाकर वे रहते हैं । परन्तु उन्हें मालूम है कि वहां भी वे अधिक समय तक सुरक्षित नहीं हैं ।

अतः साक़ी तिब्बेट की तरफ निकल जाने के रास्तों की तलाश में लग जाता है और एक दिन अपना झोंपड़ा फूंक कर तिब्बेट के लिए चल पड़ते हैं । परन्तु एन वक्त पर हिज हाइनेस अपने सेक्रेटरी चन्द्रकान्त को लेकर वहां पहुंचते हैं । हिज हाइनेस के आ जाने पर हर हाइनेस जो गरीबी और तंगदस्ती से लड़ते-लड़ते थक चुकी थी पैंतरा बदल देती है और हिज हाइनेस के पास पहुंच जाती हैं । साक़ी हिज हाइनेस को इल्तजा करता है कि वे हर हाइनेस को अपने साथ न ले जायें । हिज हाइनेस साक़ी की तरफ नफ़रत और हिकारत भरी नजर से देखते हैं । दोनों में शाब्दिक झपाझपी भी होती है । अचानक एक गोली साक़ी के कानों के पास से गुज़र जाती है । वह कुछ समझे उसके पहले अंग्रेज अफ़सर वाशिंग्टन तथा उसके सिपाही सबको घेर लेते हैं । साक़ी एक पहाड़ी पर से नीचे छलांग लगा लेता है और हज़ारों फिट नीचे खाई में गिर जाता है । इस संबंध में वाशिंग्टन कहता है -- " शायद गरीब का पैर फिसल गया और वह इस बुरी तरह से गिरा है कि उसकी हड्डी - पसलियां तक चुर-चुर हो गई

होंगी । " [30] गोया उसकी बहादुराना मौत भी इन लोगों को गवारा नहीं है ।

यों तो साकी की मृत्यु के साथ उपन्यास का अन्त हो जाता , किन्तु प्रस्तुत उपन्यास में हर हाइनेस के साथ हिज हाइनेस की कहानी भी जुड़ी हुई है तथा उसके साथ ही साथ अंग्रेजों की राजनीति , कूटनीति , दांव-पेच को भी लेखक चित्रित करना चाहते हैं । हर हाइनेस के पूर्व-जीवन को भी कहीं पूर्वदीप्ति (फ्लेशबेक) तो कहीं कथोपकथन शैली के द्वारा चित्रित किया है ।

हिज हाइनेस की रंगीनी , शराब और सुंदरियों की महफ़िल , उसमें चलने वाले नंगे नाच , बेशरम और अश्लील हर-कतें , हिज हाइनेस का लाट साहब की छोटी-सी मुलाकात के लिए लालायित रहना , उनके आगे भिगी बिल्ली बन जाना , राज्य की बद-इन्तज़ामी , लोगों पर के अत्याचार , अधिकारियों द्वारा प्रजा-जनों की बहू-बेटियों पर हाथ डालना , और फिर उस पर खाक़ डालने के लिए लाखों-हजारों का खर्च करना , दश हज़ार के चैक के कारण समशेरसिंह हत्याकांड में हिज हाइनेस को अंग्रेज अफ़सरों द्वारा फंसाने का षड्यन्त्र , प्रजाजनों का विद्रोह तथा इन सब कारणों से अंग्रेज़ सरकार द्वारा हिज हाइनेस के सारे अधिकारों को छीन लेना , माहवार एक हज़ार रूपये की पेंशन और जिलावतनी जैसी अनेकानेक घटनाओं से उपन्यास के तत्कालीन सामंतीय परिवेश का सजीव अंकन हुआ है ।

परन्तु उक्त घटनाओं के साथ ही ऋषभजी ने तत्कालीन राजनीतिक परिवेश , अंग्रेज़ हाकिम तथा देशी रजवाड़ों के संबंध , अंग्रेजों की कूटनीति , देशी नरेशों को पहले विलासी और विषयी बनाकर , उनकी प्रजाभिमुखता को समाप्त कर , बाद में उन्हीं कारणों को आगे धर कर दंडित करने की उनकी नीति इन सबका

बड़ा ही सूक्ष्म और ब्यौरेवार चित्रण भी उपन्यास में उपलब्ध होता है और इससे ही उपन्यास की सार्थकता में इज़ाफा होता है ।

वस्तुतः ऋषभजी के उपन्यासों में समाज के उच्च सामंतीय वर्ग में व्याप्त व्यभिचार तथा कुरीतियों का यथार्थ चित्रण मिलता है । डा. गोपालराय के अनुसार ये प्रेमचन्द युग के उन उपन्यासकारों में हैं , जिन्होंने अपने उपन्यासों में उग्रजी की तरह समाज के नग्न यथार्थ के वर्णन का साहस दिखाया था । समाज में फैले व्यभिचार और कुरीतियों का जिस साहस के साथ इन्होंने उद्घाटन किया , वह अभूतपूर्व था ।[31]

वस्तुतः ऋषभजी ने अपने उपन्यासों में एक ~~xxxxxx~~ विशिष्ट परंतु जाने-पहचाने परिवेश को लिया है । इन उपन्यासों में चित्रित यथार्थ उनका भोगा हुआ है । इस संदर्भ में डा. श्रीनारायण अग्निहोत्री का यह कथन ध्यातव्य ~~xxx~~ रहेगा -- " कल्पना से कहानी के आकर्षण की वृद्धि तो होती है परंतु उसकी अतिरंजना कथावस्तु का दोष बन जाती है । कथावस्तु में संघटन की सबसे पहली शर्त यही है कि लेखक अपने प्रति ईमानदार हो । वह जो जानता हो वही लिखे । "[32] और इस कसौटी पर उनका यह उपन्यास सौ फी सदी खरा उतरता है । डा. पारुकांत देसाई ने ऋषभजी के लेखन की उपादेयता को मूल्यांकित करते हुए कहा है कि वस्तुतः उनका लेखन उस युग की छवि की समग्रता के लिए अत्यावश्यक है । प्रेमचन्दजी ने निम्न-मध्यवर्ग का सही-सही चित्रण किया है , परन्तु उच्चवर्ग की वह रंगीनियां अनाकलित रह गईं हैं जो निम्न-मध्यवर्ग की उस शोषित स्थिति के लिए उत्तरदायी है ।~~33~~ इसकी आपूर्ति ऋषभजी के लेखन द्वारा हो पाई है ।[33]

चम्पाकली :

ऋषभचरण जैन हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेमचन्द की आदर्शवादी नैतिकता के प्रति अपने ढंग से विद्रोह करने वाले उपन्यासकार

हैं जिन्होंने सामाजिक कुरीतियों के समाधान काल्पनिक 'सदनों' और 'आश्रमों' में ढूंढने से इन्कार कर दिया । प्रस्तुत उपन्यास "चम्पाकली" में भी लेखक के इसी अभिगम को देखा जा सकता है । इस उपन्यास की भूमिका में वे कहते हैं -- " हिन्दी की दुनिया में सच बोलने की , सच कहने की और सच लिखने की प्रवृत्ति इतनी कुंठित क्यूं है और क्यू नहीं जिम्मेदार लोग इस प्रवृत्ति के उभरने का अवसर देते ? कब तक साहित्य की दुनिया में यह ढकोसलावाद चलता रहेगा ? " [34]

हम ऐसा कह सकते हैं कि ऋषभचरण जैन ने अपने उपन्यासों में यथार्थ के निर्मम दर्पण में सामाजिक कुरीतियों व विकृतियों के दर्शन कराके मनुष्य के असली चेहरे को बेनकाब करने का यत्न किया है । उनका ढंग रोग-शामक औषधि का नहीं , प्रत्युत शैल्य चिकित्सा का है । हिन्दी साहित्य के औपन्यासिक आलोचकों ने उन पर "प्रकृतवाद" का लेबल लगाकर जहां उनकी रचनाओं को समझने में अनुदारता का परिचय दिया है , वहां उनकी सीमित विवेचन-दृष्टि के कारण उन्हें अन्याय भी हुआ है ।

वे हिन्दी के उन औपन्यासिकों में माने जाते हैं जिन्होंने अपने वैविध्यपूर्ण जीवनानुभवों से समाज के एक विस्तृत एवं विविध-स्तरीय क्षितिज को उद्घाटित किया है । उनकी सामाजिक अनुभूति एक सच्चे साहित्यिक की अनुभूति थी । फलतः उन्होंने जीवन के घिनौने कोनों और अंतरों में झांककर उनके भीतर की नैतिकता को प्रकट किया है । समाज के सडांध भरे परिवेश में भी उन्होंने कुछ मानवीय चरित्रों को प्रतिष्ठित किया है । 'चम्पाकली' एक ऐसा ही मानवीय चरित्र है जिसने शानो-शौकत पर मक्कारी और बेवफाई से भरी ज़िन्दगी के स्थान पर दिल्ली की गलियां और बाज़ारों में भिखारिन बनकर टुकड़े मांगना स्वीकार किया ।

अगर ये अपने मालिक और प्रेमी से बेवफाई कर जाती तो उसे ज़िन्दगी के ये मुफलिसी भरे दिन न देखने पड़ते । और मालिक भी कैसा ? मृत-- मरा हुआ । लोग तो जीवित मनुष्यों के साथ छल-छद्म छल-छद्म करते हैं । चम्पाकली मुर्दे के साथ भी वह सलूक न कर पाई । तभी तो उपन्यास के अन्त में रामदयाल का चचेरा भाई शीतलसिंह गरजकर कहता है -- " उत्तमसिंह ! इस हरामजादी को मैं तुम्हारे सुपुर्द किए जाता हूं । तुम दोनों आदमी महीने भर तक इस चुडैल का नखरा झाड़ते रहो और फिर उसकी नाक और जीभ काटकर भीख मांगने के लिए छोड़ देना । खबरदार इसमें गलती न हो । " 35

इस उपन्यास में आये हुए पुरुष पात्र रामदयाल , शीतल-प्रसाद तथा चम्पाकली का फर्जी पिता चम्पाकली को एक अवैध अवैध वेश्या ही मानते हैं । उनकी दृष्टि में वेश्या पैसे की दुनिया में जीती है , मरती है और सांस लेती है । पैसे के बल पर उसकी लाज खरीद लीजिए , और पैसे की ही मदद से उसका शरीर । " 36

परन्तु प्रस्तुत उपन्यास की चम्पाकली वेश्या की परिभाषा के इस चौखटे में नहीं आती । पेशे से तवायफ और वेश्या होते हुए भी मन और आत्मा से चम्पाकली किसी भी पवित्रतम स्त्री से कम नहीं है । लोगों के मनोरंजन के लिए तथा अपने फरजी पिता के निर्मम आदेशों से विवश कई बार उसे अपने ग्राहकों के लिए नाचना-गाना पड़ा है । परन्तु मन और आत्मा से तो वह केवल रामदयाल को चाहती है । इस विषय में उसकी निष्ठा व एकाग्रता किसी भी सती स्त्री से कम नहीं आंकी जा सकती । कई बार बाह्यतया सती-साध्वी दृष्टिगत होने वाली स्त्रियां अपने हृदय की गहराई में संचित विकृतियों के कारण किसी वेश्या से भी निम्नतम कोटि की होती हैं और बाह्यतः वेश्या या सामानय दिखने वाली स्त्रियां अपने अंतरतम में किसी सती-साध्वी स्त्री से कम नहीं होतीं । चम्पाकली वेश्या होते हुए भी ऐसी ही एक सती-साध्वी स्त्री है । कच्छ के महाराव लखपत-

सिंह के संबंध में कहा गया है कि उनकी मृत्यु के उपरांत सती होनेवाली स्त्रियों में उनकी एक भी पत्नी नहीं थी , वे सब उनकी रक्षिताएं थीं ।[37] जिनको समाज में सामान्य तौर पर हेय दृष्टि से देखा जाता है ।

यहां पर एक प्रसिद्ध कहानी का स्मरण बरबस हो आता है । किसी एक नगर में एक सेठानी रहती थी । सेठानी पतिव्रता धर्म का पालन करती थी । प्रतिदिन पूजा पाठ करके तुलसी क्यारे में पानी डालने जाती थी । वहां पास में ही एक वेश्या रहती थी , जिसके यहां नित्य नवीन मनचले ग्राहक आते रहते थे । सेठानी जब भी तुलसी क्यारे पानी डालने जाती , वेश्या के घर की तरफ़ हिकारत की नज़र से देखती , जब कि दूसरी तरफ वेश्या मन ही मन सेठानी के [illegible] भाग्य को सराहती और अपने हीन भाग्य को कोसती रहती थी । कालान्तर में दोनों की मृत्यु हुई । मृत्यु के उपरांत सेठानी को नरक में डाला गया जबकि उस वेश्या को स्वर्ग की प्राप्ति होती है । इस पर सेठानी द्वारा आपत्ति किए जाने पर स्पष्टीकरण मिलता है कि वह वेश्या बाह्यतः वेश्या होते हुए भी मन से पवित्र थी क्योंकि उसे अपने व्यवसाय के प्रति वितृष्णा थी और वह सेठानी की तरह एक पतिव्रता का जीवन जीना चाहती थी । दूसरी तरफ सेठानी बाह्यतः पतिव्रता धर्म का पालन करते हुए भी उसके भीतरी मन में वेश्या के यहां जाने वाले मनचले युवकों के प्रति एक आकर्षण भाव था । अतः वेश्या आंतरिक दृष्टि से पतिव्रता थी और सेठानी आंतरिक दृष्टि से हरजाई और वेश्या थी ।

तात्पर्य यह कि यहां चम्पाकली को जो जीवन व्यतीत करना पड़ता है वह उसकी विवशता थी । यदि वह पैसे में जीने , मरने और सांस लेने वाली होती तो ग्राहक के बहुत इसरार करने पर वह शराब पी लेती । परन्तु वह ग्राहक की बदतमीजी और मार बरदाश्त कर लेती है , परन्तु शराब नहीं पीती ।[38] इस प्रसंग से चम्पाकली के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है और वह भीतर से कितना खरा कंचन है उसकी प्रतीति होती है ।

रामदयाल के प्रति उसकी जो निष्ठा है , उसके कारण वह शीतलप्रसाद से समझौता नहीं करती । यह जानते हुए भी कि रामदयाल डूबता हुआ सूरज है , उसकी निष्ठा में एक बाल बराबर भी फर्क नहीं आता । जबकि शीतलप्रसाद धन , वैभव तथा विलासिता प्रदान करने वाला पूर्णिमा का चन्द्र है ।

उपन्यास में तवायफों के सन्दर्भ में कहा गया है -- " जो दुनिया भर को बनाये , लेकिन सारी दुनिया मिलकर भी जिसे न बना सके । तवायफ वह परिन्दा है जो किसी फंदे में नहीं फंसता और जिस पे दुनिया के पागल लोग अंधे पतिंगों की तरह खींचकर गिरते और जलते हैं । "[39] परन्तु चम्पाकली इस परिभाषा पर खरी नहीं उतरती है । चंपाकली तवायफ होते हुए भी एक दूसरी ही दुनिया की स्त्री है । उसका तन गंदला हो गया है , पर मन तो गंगा की तरह पवित्र है ।

' चंपाकली ' में लेखक ने ऐसी जगहों पर सुकोमल मानवीय अनुभूति के दर्शन कराये हैं , जहां सामान्य धारणा के अनुसार स्निग्ध भावनाएं और संवेदनाएं मर जाया करती हैं । जहां चांदी की खनक , इत्र-फुलेलों की गमक , नुपूरों की गूंज और सतही वाह-वाह की धूम में आत्माएं खो जाती हैं । लेखक कहना चाहता है कि तन के कलुष के इस समुद्र में रहकर भी मन जल के कमल की भांति सर्वथा निष्कलुष रह सकता है और नारी मन की प्यास सदा प्यार के दो बोलों की स्वाति-बूंद के लिए तरसती -तड़पती रहती है । चम्पाकली को रामदयाल के रूप में अपनी मंज़िल मिल जाती है , जहां वह मन की सु संपूर्णता में समर्पित होना चाहती ××××× है । किन्तु दूसरी ओर रामदयाल उसका मोल चांदी के सिक्कों में ही आंकता है तो उसका चचेरा भाई शीतल चंपाकली को अपने मरणोन्मुख भाई की संपत्ति समझते हुए कानूनी तौर पर चम्पाकली पर अपना हक जताता है । यह एक विचित्रता ही है कि जहां एक " 'रूपाजीवा ' सामान्य धरातल

से उठकर अपनी नारी सुलभ कोमल संवेदनाओं के कारण एक गरिमामय मानवीय धरातल का स्पर्श करने लगती है , तो दूसरी तरफ पुरुष का व्यवसायी मन उसकी भावनाओं की भी सीमा बांध लेता है । नारी और पुरुष के मनोगत कार्य व्यापार का यह चित्रण मनोरम भी है और नारी की आंतरिक कोमलता के प्रति लेखक की श्रद्धांजलि भी है ।

प्रस्तुत उपन्यास " चम्पाकली " की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि चम्पाकली रण्डी या वेश्या होते हुए भी रामदयाल को जी-जान से चाहती है , परन्तु दूसरी तरफ रामदयाल उसे रण्डी ही समझता है । एक स्थान पर वह कहता है — " तुम रण्डी हो और रण्डी की क़ीमत मेरी नज़र में कागज के टुकड़ों से ज्यादा नहीं । " [40]

वही रामदयाल चंपाकली के रोने पर कहता है — " रोने की इज़ाज़त नहीं है चम्पाकली । अगर आंसू निकल गया तो तुम फेल हो गई । कलेजे की व्यथा को वहीं दबी रहने दो । तुम्हें आज की रात जिसने खरीदा है , तुम्हारा धर्म है कि उसे खुश करो । वह हंसे तो हंसो , वह रोये तो भी तुम हंसो । उसकी सारी ज्यादतियां , उसके सारे जुल्म , उसकी सारी इच्छाएं तुम्हें हंसते-हंसते सिर झुकाकर सहनी होगी । यही तुम्हारे जीवन का उद्देश्य है । और उसमें फेल हुई तो तुम अपने आसन से गिर गई । वह कोई भी हो , बूढ़ा हो , जवान हो , कुरूप हो , कमीना हो , रोगी हो , तुम्हें उसे गले लगाना ही होगा । आज की रात में उसकी इच्छाएं तुम्हारी इच्छाएं हैं । तुम उसकी औरत , रखैल , प्रेमिका , दासी सभी कुछ हो । तुम्हें वह ओढ़े या बिछाये , तुम उसे कदापि बाधा न दे सकोगी और चेहरे की भाव-भंगी से यह भी जाहिर न होने दोगी कि उसकी कोई चेष्टा तुम्हें नापसंद है । समझो , चम्पाकली यही तुम्हारा जीवन है । "[41]

परन्तु चंपाकली तो किसी और ही मिट्टी की बनी हुई है । वह रामदयाल को पूर्णतया और सच्चे मन से चाहती है । वह

रामदयाल से कहती है -- " हां , मैं तुम्हें प्यार करती हूं । मैं जानती हूं मुझे किसीको प्यार करने का अधिकार नहीं है । कोई मेरी इस बात पर यकीन नहीं करता ... लेकिन सच , मैं रण्डी बनकर तुम्हारे साथ नहीं सोई मेरे प्यारे , मैं तुम्हारी बनकर यहां रही हूं और मुझे इसके एवज में धन-दौलत की ख्वाहिश सर्वथा नहीं .... मैं जानती हूं कि तुम बहुत बड़े आदमी हो । मैं यह भी जानती हूं कि तुम पक्के तमाशबीन हो । यह भी मुझे पता है कि तुमने तमाशबीनी में हजारों रूपये स्वाहा किए हैं और यह भी मुझे तुम्हीं ने बतलाया कि तुम दिल भी रखते हो । लेकिन क्या तुम इस बात पर यकीन रखते हो कि रण्डी भी दिल रखती है । और कोई रण्डी तुमसे भी बड़ा दिल रख सकती है ? अगर तुम यह नहीं जानते तो मैं यह चाहती हूं कि आज तुम यह जान लो । मैं तुम्हें चाहती हूं और चाहती हूं कि तुम मुझे प्यार करो । इन कागज के टुकड़ों से तोलने वाले मुझे बहुत से मिले और बहुत से मिल जायेंगे , लेकिन क्या तुम ... सिर्फ तुम , रामदयाल क्या मुझे इनसे अलग रख-कर भी प्यार कर सकते हो ? " [42]

पात्रों के कथोपकथन से भी उनके चरित्र पर प्रकाश पड़ता है । उक्त दोनों कथनों से क्रमशः रामदयाल तथा चम्पाकली के चरित्र उद्घाटित होते हैं । उपन्यास में चरित्र-चित्रण की एक सहज प्रणाली मिलती है । लेखक ने चरित्रों को अपने आप खुलने और बहने दिया है , फलतः चरित्रों पर अप्रत्याशित अतएव अवास्तविक बोझ नहीं पड़ता । प्रारंभिक बिन्दुओं की तलाश के बाद लेखक चरित्रों को अपने हाल पर छोड़ देता है -- वे जैसे भी हैं अपने सहज रूप में पाठकों के सम्मुख आते हैं । चरित्र-सृष्टि के संबंध में थैकरे का कथन है कि -- " आई डु नोट कन्ट्रोल माय कैरेक्टर्स . थे आर नोट इन माय हेण्ड्स . थे टेक मी व्हेरएवर थे लाइक . " [43] ऋषभजी के पात्रों के सन्दर्भ में भी यही बात कही जा सकती है । संक्षेप में कह सकते हैं कि वस्तु-संगठन , शिल्प, चरित्र-चित्रण , कथोपकथनों के सार्थक प्रयोग तथा अपनी प्रावाहिक सहज-सरल भाषा-शैली प्रभृति के कारण यह उपन्यास पठनीय बन पड़ा है ।

भाई :
=====

"भाई" ऋषभचरण जैन का एक प्रतिनिधि उपन्यास है । इसमें प्रारंभ की " उपक्रमणिका " में सिंभू और रामसनेही के बचपन का संक्षेप में उल्लेख करने के पश्चात् बाद में दोनों भाइयों के परिवारों की कथा दी गई है । सिंभू आयु में बड़ा था , रामसनेही छोटा । पर शारीरिक दृष्टि से रामसनेही सिंभू से अधिक बलवान था । रामसनेही के पिता के मृत्यु के बाद सिंभू के पिता ने ही उसे पाल-पोसकर बड़ा किया था । उसका विवाह भी उन्होंने ही करवाया था । सिंभू अपने छोटे भाई रामसनेही को बहुत ही चाहता था । परंतु उसकी पत्नी कर्कशा और कलहारी स्त्री थी । शैलेश मटियानी के उपन्यास "हौलदार" की भौजी की भांति वह भी बहुत कमेरी थी , परन्तु उसे अपने पिता की संपत्ति और "दरोगा भाई" का बड़ा घमण्ड था । रामसनेही का लालन-पालन उसके पति के पिता ने किया था , इस कारण भी वह रामसनेही तथा उसकी पत्नी दुर्गा को अपने सामने कुछ गिनती नहीं थी ।

परन्तु उपन्यास में सरूपी के स्वभाव के कारण होने वाले कलह के साथ-साथ गांवों में बढ़ रहे हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य , गांव के लोगों द्वारा एक-दूसरे का पक्ष लेना , इसी बहाने अपनी दुश्मनी निकालना, चोरी , मारपीट , फसल में आग लगाना , जज-कचहरी , मुकदमा जैसी घटनाओं के द्वारा बुलंदशहर के निकटवर्ती मधुपुर गांव के जनपदीय जीवन को लेखक ने प्रस्तुत किया है ।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने सिंभू , रामसनेही , सरूपी , दुर्गा , नुरूद्दिन , कुतुबी , भगवान दह , बलदेव , निशारू , आज़िम-अली , बूंदे बूंदू जैसे पात्रों के द्वारा ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण किया है । सिंभू और रामसनेही का सहज स्नेह , सरूपी का कलहप्रिय स्वभाव , उसके कारण दोनों भाइयों का अलग्यौजा , फिर भी भीतरी स्नेह का बना रहना , सरूपी पर रामसनेही का हाथ

उठ जाना , फलस्वरूप दोनों भाइयों के प्रेम में दरार पड़ना , शहरों के हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का गांव पर प्रभाव पड़ना , नुरूद्दीन और रामसनेही की टकराहट , नुरूद्दीन पहलवान का रामसनेही द्वारा पराजित होना , नुरूद्दीन में इन्तकाम की भावना का भड़कना, शहर से आये कुतुबी तथा कुछ दूसरे लोगों का आग में घी डालने जैसा काम , नुरूद्दीन और कुतुबी द्वारा सिंभू को बरगलाने का प्रयत्न , सिंभू और सरूपी का झगड़ा , सरूपी की सिंभू द्वारा पिटाई , क्रोध तथा परेशानी के कारण सरूपी को कुछ अधिक लग जाना और फलतः उसकी मृत्यु , कुतुबी द्वारा सरूपी पर रामसनेही के मूठ छोड़ने की बात , रामसनेही के पके धान के खेतों को कुतुबी द्वारा जला देना , इसका दोष सिंभू के मत्थ पर मढ़ना , राम सनेही का सरूपी के अंतिम संस्कार में न जाना , फलस्वरूप सिंभू का नुरूद्दीन द्वारा कुतुबी , निसारू, बुंदू और आज़मअली को पिछली रात में 'पसर '[44] के समय रामसनेही की हत्या के षड़यन्त्र में भेजना , स्वबचाव में रामसनेही का लाठी चलाना, रामसनेही की लाठी से कुतुबी का ढेर हो जाना , नुरूद्दीन तथा सिंभू के इशारे पर रामसनेही पर झूठा मुकदमा दायर करना , सिंभू की झूठी गवाही के कारण रामसनेही को फांसी की सजा हो जाना , दुःख आघात तथा दरिद्रता में रामसनेही के पुत्र का निधन , सिंभू के पुत्र मनोहर को बेतहाशा बुखार हो जाना , सिंभू के मन में इस बात की शंका पैदा होना कि पुत्र की झूठी कसम खाने के कारण गंगा मैया उसके पुत्र पर कहर बरपा रही है , सिंभू के द्वारा अपने पाप का प्रायश्चित करना , दुर्गा के समक्ष अपने प्रायश्चित का इकरार करना तथा दुर्गा की गोद में अपने पुत्र को छोड़ कर चले जाना जैसी अनेकानेक घटनाएं अपने यथार्थ रूप में उद्घाटित हुई हैं ।

उपन्यास के अन्त में सिंभू के हृदय परिवर्तन की घटना है और इस बात का संकेत दिया गया है कि सिंभू जज के सम्मुख सही-सही बयान देगा । फलस्वरूप रामसनेही निर्दोष छूट जायेगा । झूठी गवाही देने के उपलक्ष्य में सिंभू को कुछ सजा भी हो सकती है । परंतु

उपन्यास के अन्त में सिंभू दुर्गा से कहता है — " दुर्गा मैंने बड़ा पाप किया है । मैं जाता हूं लौटकर नहीं आऊंगा । मेरी जगह , जमीन , रूपया , पैसा और मेरा मनोहर अब तुम्हारा है । मैं जाता हूं । सीधा जज साहब के पास जाऊंगा । सब हाल सच-सच कह दूंगा । " [45]

सिंभू जाते-जाते अपनी एक और शंका का निवारण करता जाता है । वह दुर्गा से पूछता है — " दुर्गा , कुतुबी ने मुझसे कहा था कि रामसनेही ने सरूपर पर मूठ छुड़वाई थी । तुझे गंगा माता की सौगन्ध सच बता यह बात सच थी या झूठ ? " [46] इस पर दुर्गा कांप उठती है और बदहवास होकर कहती है — " हाये राम कैसा कलंक कैसा कलंक । " [47] उपन्यास का अंतिम वाक्य है -- " सिंभू ने उत्तर पा लिया । वह फिर वहां न ठहरा । " [48]

डा. सुरेशचन्द्र गुप्त ऋषभचरण जैन के सन्दर्भ में लिखते हैं: 'भाई' उपन्यास की भूमिका में लिखते हैं — " हिन्दी के यथार्थवादी कथा-साहित्य के वह अग्रणी लेखक हैं -- उग्र , नागार्जुन और रेणु इसी परंपरा की अगली कड़ी है । मानवीय सहानुभूति उनके लेखन की अनिवार्य शर्त है । फलस्वरूप पात्रों के मनोविश्लेषण पर उनकी गहरी पकड़ है । जीवन का कोई पक्ष उनकी रचना में अछूता नहीं रहा है । मानव की किसी संवेदना को उन्होंने ओझल नहीं होने दिया । उनके मनोविश्लेषण में जीवन की व्यावहारिकता है , जिसे उन्होंने प्रेमचन्द से विरासत में प्राप्त किया था । बाद में जैनेन्द्र , अज्ञेय , इलाचन्द्र जोशी ने इसीकी एकेडेमिक बारीकियों को अपने कथा-साहित्य का विषय बनाया । " [49]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक की उक्त सभी विशेषताएं लक्षित की जा सकती हैं । इसमें लेखक ने ग्रामांचल के कथानक को सहजता , अपनेपन और यथार्थ-बोध के साथ उकेरा है । हम इस

प्रवृत्ति को आंचलिक कथा-साहित्य के एक प्रेरक बिंदु के रूप में स्वीकृत कर सकते हैं ।

पात्रों के मनोविश्लेषण में लेखक ने अपनी गहरी सूझ-बूझ का परिचय दिया है । मनुष्य का मन बड़ा ही जटिल और चंचल होता है । कई बार वह सोचता कुछ है , और भावावेश में आकर कुछ दूसरा ही कर बैठता है । सरूपी की जली-कटी बातों से परेशान होकर रामसनेही अपना आपा खो बैठता है और क्रोध में आकर गरम खीर की कटोरी अपनी बड़ी भौजी सरूपी के मुंह पर दे मारता है । वह मारते तो मार बैठता है , परन्तु उसे बड़ा पछतावा होता है । उसकी पत्नी दुर्गा के समझाने पर वह अपने अहम् को भुलकर दूसरे दिन सिंभू के घर मुआफी मांगने के उद्देश्य से जाता भी है , परन्तु फिर वहां सरूपी की जली-कटी और उलजलूल बातों से मुआफ़ी मांगना तो एक तरफ रहा उल्टे सिंभू से अनकहनी बातों को कहकर वापिस लौट आता है । इस प्रसंग का चित्रण लेखक ने बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है । रामसनेही को देखकर सिंभू सरूपी को उसके लिए चिलम लाने को कहता है । इस पर सरूपी कड़ककर कहती है -- " जिस हरामजादे ने मेरे पर हाथ उठाया , दामाद बनाकर उसकी खातिर करोगे ? हूं , मैं इसकी छाती का खून पीऊंगी । " 50

सरूपी की इस बात से क्रोध , अपमान और लज्जा से रामसनेही का चेहरा सुर्ख हो जाता है । और क्षमा-याचना के बदले उल्टे वह कह बैठता है -- " बस भई , सिंभू रहने दो ; मैं इस चुड़ैल के हाथ की चिलम नहीं पीऊंगा । सच पूछो तो मैं यहां आकर भी पछता रहा हूं । मैं आया था किसी और काम से , कोई और बात कहने , पर अब वह बात कहकर मैं अपनी हेठी कराना नहीं चाहता । अब मैं कहता हूं , हमारा-तुम्हारा चूल्हा जुदा हुआ , अब आज से आना-जाना , बोल-चाल और लेन-देन भी खतम । आज से हम तुम्हारे लिए मर गये , तुम हमारे लिये । और इस (सरूपी की ओर संकेत करके) हरामजादी को मैंने अपने घर में देख लिया , तो कल तो खीर की

थाली ही फेंकी थी, अब तो जूतों से उसकी खबर लूंगा।"[51] वस्तुतः रामसनेही के इन शब्दों से एक बनती हुई बात बिगड़ गई और सिंभू के मन में भी रामसनेही के लिए वितृष्णा के भाव पैदा हो गये।

सिंभू के मन में रामसनेही से बदला लेने की जो भावना है और कुतुबी इस भावना को लेकर उसमें आग में घी देने का काम करता है। वहां भी लेखक ने सिंभू के मन में जो "______" (इद) और "______" (इगो) का द्वन्द्व चलता ~~हुआ~~ है, उसका कुशलतापूर्वक चित्रण किया है। कुतबी के बहुत कहने पर रामसनेही के खेत में आग देने की बात वह स्वीकृत तो कर लेता है, पर फिर एक बार रात को घर आकर मिल जाने को कहता है और तब वह कुतबी को साफ मना कर देता है। कुतबी उसे बहुत समझाता है पर वह टस से मस नहीं होता है और आखिर में कहता है -- " रामसनेही मेरा भाई है। अगर उसने बेवकूफी की तो मैं बेवकूफी नहीं करूंगा। मेरा उसका चोली-दामन का साथ रहा है। उसने मुझ पर हजारों तरह के एहसान किए हैं।"[52]

वस्तुतः "भाई" के सिंभू को देखकर हमारे सामने "गोदान" का होरी खड़ा हो जाता है। यहां यह ध्यातव्य रहे कि "गोदान" "भाई" से चार वर्ष बाद में लिखा गया है। इस सन्दर्भ में डा. सुरेशचन्द्र ने लिखा है -- " श्री. ऋषभचरण जैन हिन्दी के उन उपन्यासकारों में हैं जिन्होंने प्रेमचन्दयुग में आरंभ किया था और शीघ्र ही अपनी अलग पहचान बना ली थी। "भाई" उपन्यास की रचना उन्होंने सन् 1931 में की थी -- प्रेमचन्द के "गोदान" से प्रायः चार वर्ष पूर्व।"[53]

डा. मोहनलाल रत्नाकर के शब्दों में " यह उपन्यास प्रेमचन्द परंपरा के सामाजिक उपन्यासों के अन्तर्गत स्थान पाता है। इसमें ऋषभचरण जैन स्वस्थ यथार्थ का निरूपण करते हैं। इसीसे यह स्थायी महत्व प्राप्त करने वाला उपन्यास माना जाता है ... इस उपन्यास का कथानक ग्रामीण जीवन की असंगतियों से संबंध रखता

है । गांव के लोग प्रायः अशिक्षित और मूढ़-मति होने के कारण परस्पर लड़ते-झगड़ते रहते हैं । ग्रामीण नारियां ईर्ष्या , द्वेष और अज्ञानता की शिकार होकर लड़ाई-झगड़ों की प्रेरणास्रोत बनती हैं । इस उपन्यास में रामसनेही और सिंभू के झगड़ों में सिंभू की पत्नी सरूपी का मुख्य हाथ है । " 54

इस उपन्यास में लेखक ने हिन्दु-मुस्लिम संघर्ष और विद्वेष का चित्रण भी सफलतापूर्वक अंकित किया है । यह ध्यातव्य है कि यह उपन्यास सन् 1931 का है , परन्तु हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष तथा दंगों की दृष्टि से वह आज भी प्रासंगिक है । नुरूद्दीन पहलवान मधुपुर गांव का एक नामी-गिरामी पहलवान है । गांव में उसकी इज्जत है । उसके अखाड़े में हिन्दू-मुस्लिम सभी जाते हैं । अखाड़े में हनुमानजी की तस्वीर भी है । परंतु शहरों में जो हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष होते हैं उसके छींटे मधुपुर गांव तक जाते हैं । एक दिन शहर के कुछ लोग नुरूद्दीन को मिलते हैं और दूसरे दिन हनुमानजी की तस्वीर उठा ली जाती है । इस बात को लेकर गांव के हिन्दू-मुसलमानों में एक दरार-सी पड़ जाती है । रामसनेही हिन्दुओं के लिए अलग अखाड़े× अखाड़े की व्यवस्था करता है । राम-सनेही तथा नुरूद्दीन की कुश्ती को भी हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का रूप दिया जाता है ।

गांव में यह विषवृक्ष कुतबी ने बोया है । कुतबी रोजगार की तलाश में शहर गया था । परंतु शहर में हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य के बढ़ जाने से उसे काम नहीं मिलता । वह गांव लौट आता है । परंतु उसके मन में इस घटना के कारण हिन्दुओं के लिए एक विद्वेष पैदा हो जाता है । उपन्यास में एक स्थान पर वह सिंभू से कहता है -- " अजी , ससुरे बदमाश पैदा हो गये हैं बहुत से । दस-बीस हिन्दू मिल गये , दस-बीस मुसलमान बदमाश मिल गये । झगड़ा हो गया । नतीजा इसका क्या हुआ ? हिन्दुओं ने मुसलमानों का बायकाट किया , मुसलमानों ने हिन्दुओं का । आपस में कसा-कसी बढ़ी । गरीबों की रोज़ी मर

मर गई ! ..... कोई पन्द्रह दिन हुए , बीस रूपये घर से लेकर चला था , सब बर्बाद करके आ रहा हूं । शहर में हिन्दुओं की ही ज्यादा बस्ती है । जहां गया — सवाल हुआ — हिन्दू हो या मुसलमान ? जब कहा — मुसलमान ! तो कहा गया , जाओ मुसलमान को हम कपड़े नहीं देंगे । बहुतेरे फेरे लगाये । आखिर हार कर आज लौट आया । " 55

सम्प्रति 6 दिसम्बर 1992 में अयोध्या में बाबरी मस्जिद ढहा देने के उपरांत जो हिन्दू-मुस्लिम दंगे भारत के कोने-कोने में फैले थे , उस समय भी उपर्युक्त प्रकार की अनेक बातें देखी गईं थीं । हमारे एक प्राध्यापक को उन्हीं दिनों पत्र मिला था कि वे किसी भी मुसल-मान व्यापारी से कोई सामान न खरीदें तथा किसी भी मुसलमान कारीगर को किसी प्रकार का ~~xxxx~~ काम न दें और ऐसे ही दूसरे दस पत्र अपने परिचितों और मित्रों को लिखें । इससे प्रतीत होता है कि दंगों में लोगों की मानसिकता किस कदर विकृत हो जाती है । दंगे भीड़ पर मादक प्रभाव डालते हैं और भीड़ का कोई व्यक्ति-त्व नहीं होता । इस संदर्भ में आचार्य रजनीश का निम्नलिखित वक्त-व्य गौरतलब होगा — " अगर किसी मस्जिद को जलाना हो , तो अकेला आदमी उसे नहीं जला सकता , चाहे वह कितना ही पक्का हिन्दू क्यों न हो । अगर किसी मंदिर में राम की मूर्ति तोड़नी हो , तो अकेला मुसलमान नहीं तोड़ सकता , चाहे वह कितना ही पक्का मुसलमान क्यों न हो । उसके लिए भीड़ चाहिए । अगर बच्चों की हत्या करनी हो , स्त्रियों के साथ बलात्कार करना हो और जिन्दा आदमियों में आग लगानी हो , तो अकेला आदमी बहुत कठिनाई अनुभव करता है । लेकिन भीड़ एकदम सरलता से करवा लेती है । " 56

कुतबी सिंभू और रामसनेही को लड़ाने की जो युक्ति-प्रयुक्तियां करता है , उसके पीछे भी यही मनोवैज्ञानिक कारण है ।

वह एक स्थान पर नुरूद्दीन को कहता है -- " मैं तो अपनी ज़िन्दगी इस्लाम की ही नज़र समझता हूं । मेरा क्या है , आगे नाथ न पीछे पगहा , मज़हब की जो खिदमत हो जाय । " 57 इसी मानसिकता के तहत वह नुरूद्दीन के चिढ़ाने पर रामसनेही को मारने के लिए दो-चार माराओं को लेकर रात्रि के पिछले पहर में गांव के शिवाले पर पहुंचता है जहां रामसनेही पसर के लिए गया था । परंतु रामसनेही एक अच्छा लठैत था , अतः कुतबी रामसनेही की लाठी का शिकार हो जाता है । कुतबी के खेत होते ही दूसरे मारे भाग खड़े होते हैं । इसे वक्रोक्ति (आइरनी) ही कहा जायेगा कि अंततोगत्वा कुतबी ने अपनी समझ के अनुसार मज़हब की खिदमत करते हुए ही अपनी कुरबानी दी । इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों का अच्छा अच्छा जायजा लिया है ।

इस उपन्यास की सभी घटनाएं यथार्थ पर आधारित हैं । उनका वर्णन अत्यंत स्वाभाविक ढंग से हुआ है । उसके अधिकांश पात्र वर्गगत (टाइपिकल) हैं और यथार्थ जीवन से संबंध रखते हैं । लेखक ने कहीं-कहीं विलोमी प्रकृतिवाले चरित्रों को लेकर उनका विश्लेषण किया है । जैसे सिंभू की पत्नी सरूपी और रामसनेही की पत्नी दुर्गा । सरूपी जहां मिथ्याभिमानी , कलहारी और झगड़ालू स्त्री है ; वहां दुर्गा अत्यंत ही सहनशील तथा समझदार स्त्री है । उपन्यास की भाषा भी वर्ण्य-विषय के अनुरूप है । ग्रामीण पात्रों के स्तर और सभ्यता के अनुसार लेखक ने कहीं-कहीं अशिष्ट शब्दों एवं वाक्यों का भी उपयोग किया है , जैसे -- सरूपी का दुर्गा के प्रति यह कथन -- " बस जीभ रोक के बात कर ! चुडैल तुहोगी । ... ससुरई के कल्ले चीर के रख दूंगी , ज्यादा बकवाद करेगी तो । ... लो बोलो , हमारे सामने ब्याही आई और हमारे साथ ही जबानदराजी करती है । ससुरी बदमाश कहीं की ... आ लुच्ची आ , बेहया आ , तेरी बदमाशी झाडूं । " 58

पात्रों के चरित्र-चित्रण तथा कथा-विन्यास के लिए लेखक ने कहीं परिचयात्मक शैली तो कहीं विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग किया है । यथा — " थोड़ा-सा कुटुंब का इतिहास कहना है । रामसनेही और सिंभू जाति के चौहान , और एक ही दादा के पोते थे , चचेरे भाई । " 59 उसी प्रकार सरूपी के संबंध में ये कथन — " दुर्गा ने हाथ जोड़कर शांत करने की कोशिश की पर वह न मानी । इसके परिणाम-स्वरूप जो हुआ , आपको मालूम है । " 60

उपन्यासकार की यह शैली पुरानी होते हुए भी उसमें सहजता और रोचकता है । कुल मिलाकर प्रस्तुत उपन्यास प्रेमचन्द परंपरा का यथार्थवादी उपन्यास है , परंतु यहां यथार्थ के नाम पर जीवन के कुछ तमिस्रापूर्ण गलियारे ही नहीं मिलते , अपितु इसमें मानवीय भावनाओं की के दीपक भी कहीं-कहीं झिलमिलाते नज़र आते हैं ।

ज़नानी सवारियां :

ऋषभचरण जैन के उपन्यासों में हमें उनके अनेकमुखी या बहुमुखी जीवनानुभवों और उनकी पैनी अन्तर्दृष्टि का परिचय मिलता है । हमारे सामाजिक जीवन के जो घिनौने कोने और अंतरे हैं उनका पर्दाफाश उनके उपन्यासों का मुख्य प्रतिपाद्य रहा है । "अपिहितमुख हिरण्यमयपात्र " को अनावृत्त कर अप्रिय सत्य का दिग्दर्शन कराने में वे सिद्धहस्त हैं । अतः उनके साहित्य को समझने के लिए तत्कालीन सामाजिक परिप्रेक्ष्य को दृष्टि में रखना आवश्यक है । प्रस्तुत उपन्यास में भी हमें लेखक की उक्त सभी प्रवृत्तियां मिलती हैं ।

इस उपन्यास को पहले "बुर्दाफरोश" नाम दिया गया था । अर्थात् इसमें "रक्त के व्यापार" को , स्त्री की इज्जत- अस-मत के व्यापरर को ,उसके नाना हथकंडों और अड्डों को प्रस्तुत उप-न्यास में xxx कथ्य का विषय बनाया गया है ।

" जनानी सवारियां " अपने रचना शिल्प में उनके अन्य उपन्यासों से थोड़ा अलग पड़ता है । उपन्यास को सात अध्यायों में विभक्त किया गया है । वे सात अध्याय इस प्रकार हैं -- "लाला लोग" , "बेचारी बच्चियां" , "झांसापट्टी" , " दुकानदारी " , "हाथ-पैर " , "ठिकाने" और "जनानी सवारियां " । अंतिम अध्याय "जनानी सवारियां" पर से उपन्यास को शीर्षक दिया गया है । उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता इससे सिद्ध होती है कि इन जनानी सवारियों में विराजमान महिलाओं का प्रयोग व्यापार के रूप में होता रहा है । वे व्यक्ति न होकर केवल "माल" है और समूचे उपन्यास में रक्त के इस व्यापार को ही केन्द्र में रखा गया है । इन सभी अध्यायों में केन्द्रीय पात्र है रामजीदास । यह रामजीदास ही इन विविध अध्यायों की कहानियों को उपन्यास का रूप देता है , अन्यथा ये अलग-अलग कहानियां भी हो सकती हैं । उपन्यास की विभिन्न कथाओं में रामजीदास की घृणित एवं जघन्य गतिविधियों , काले कारनामों और गोरखधंधों को उजागर किया गया है ।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता " कहनेवाले हमारे ढोंगी समाज में नारियों की कैसी-कैसी पूजा होती है , यह हम इस उपन्यास में देख सकते हैं । इस पाजी व्यवसाय के कर्णधार सामाजिक कुरीतियों की शिकार भोली-भाली लड़कियां और स्त्रियों को कैसे अपने जाल में फंसाते हैं इसका यथार्थ चित्रण यहां प्रस्तुत है । उपन्यासकार का मंतव्य है कि समाज के स्वास्थ्य के लिए उन आधारभूत कारणों पर प्रहार करना होगा जो इन मनोवृत्तियों और विकृतियों के उत्स में हैं । लेखक का अपना वक्तव्य उनके इस मंतव्य को उजागर करता है -- " अगर किसीने इस पुस्तक को पढ़कर महसूस किया कि इस राक्षसी व्यापार के विरुद्ध कुछ करने की जिम्मेदारी उस पर भी है , तो समझिये पुस्तक का सदुपयोग हो गया है । " 61

प्रस्तुत उपन्यास की प्रासंगिकता इससे भी सिद्ध होती है कि अभी कुछ समय पूर्व महाराष्ट्र के जलगांव , सावंतवाड़ी तथा

परवणी जैसे स्थानों से जो सेक्स-कांड प्रकाश में आये हैं उनमें भी भोली-भाली , किन्हीं हालातों से मजबूर ऐसी लड़कियों और स्त्रियों को फंसानेकी जघण्य प्रवृत्ति पाई गई है । किसी तरह उनको अपने जाल में फांसकर उनका दैहिक शोषण किया गया है और उनकी वीड़ियो कैसेट लेकर उनसे बारबार वही जघण्य कार्य करवाये गए हैं । [62]

बुर्दाफरोश रामजीदास के मनोवैज्ञानिक हथकंडे देखने की चीज़ है । दुनियाभर के हर तबके के लोग उसके शिकार हैं । बाज़ार के लाला लोग जो सुदखोरी के व्यापार में गरीबों का ख़ून चूसते हैं और "चमड़ी जाय पर दमड़ी न जाय " वाली कहावत को चरितार्थ करते हैं , वे भी रामजीदास की चालों के आगे अपनी व्यापारिक चौकसी भूल जाते हैं और उसकी जबान के रंगीन चाबुक लगते ही रूपया पानी की तरह बहाने को उद्यत हो जाते हैं । "लाला लोग" वाले अध्याय में रामजीदास के इन मनोवैज्ञानिक हथकंडों का लेखक ने बख़ूबी चित्रण किया है । इसमें रामजीदास एक ही लड़की को अक्षतयौना घोषित करके एक रात के लिए लालाजी×××× से सवा दो सौ रूपये उगलवाता है , तो दूसरी तरफ मनोहरदास जैसे कंजूस सेठ से भी पचहत्तर रूपये और एक साड़ी में उसी लड़की का सौदा पटाता है ।[63] यहां यह त××× तथ्य ध्यातव्य है कि उस जमाने के सौ रूपये आज के दो-तीन हजार से कम नहीं थे ।

रामजीदास हजार से बात शुरू करके आखिर में सवा दो सौ में सौदा पटाता है और उसी लड़की से मनोहरदास से भी पचहत्तर रूपये दूसरे खड़े कर लेता है । इस अध्याय में रामजीदास की बातों के तौर-तरीके और अंदाज बिलकुल औरतों के दलाल -- भड़वे -- जैसे हैं । भाषा भी उसी के अनुरूप है ।

दूसरे अध्याय "बेचारी"बच्चियों " में रामजीदास अपने इस रक्त के व्यापार के लिए लड़कियों को कहां-कहां से और किस-किस प्रकार से ले आता है उसका यथार्थ वर्णन किया गया है । इसके

लिए बाकायदा एक तंत्र खड़ा किया गया है । एक जाल बिछाया हुआ है । बादाम उसी तंत्र का एक पुर्जा है । एक स्थान पर वह कहता है-- "जान तो जरूर हथेली पर रखनी पड़ी पर हनुमानजी की कृपा से सब मामले फतह हो गये । ... कई जगह दिक्कत उठानी पड़ी । आप जानिये अकेला आदमी ... कई-कई औरतें । खुफिया के आदमी कई जगह मिले । काठगोदाम पर टोका । बरेली पर पकड़ते-पकड़ते बचा, मुरादाबाद पर भी रोक हुई और गाज़ियाबाद पर भी चक्कर लगाये गये । लेकिन कहीं चकमा देकर , कहीं शान बांध कर , कहीं खुशामद करके तो कहीं धौंस दिखाकर काम निकाल लिया । " 64

इसी अध्याय में जिन लड़कियों को झांसा देकर धोखे से इस व्यवसाय में लाया जाता है उन पर कैसे-कैसे अत्याचार होते हैं उसे भी रेखांकित किया गया है । " रामजीदास लपकता हुआ बराबर के कमरे में घुस गया और एक मजबूत चाबुक हाथ में लिए बाहर निकल आया । आते ही उसने बिना एक क्षण की प्रतीक्षा किए सड़ाक-सड़ाक चाबुक फटकारना शुरू कर दिया । दोनों नवजवान और बादाम पत्थर की मूरत की तरह थमे यह दृश्य देख रहे थे । पांचों लड़कियों के सिर चाबुक से उधेड़े जा रहे थे और उनके क्रंदन से सारा कमरा भर गया था । जब रामजी मारते-मारते बेदम हो गया तो बोला --' बादाम अब इन्हें ले जाओ , अपने सब साथियों से कहो कि रात भर में इनका सब नखरा उतार दे ।' " 65

तीसरे अध्याय "झांसापट्टी" में रामजीदास लाला लोगों को कैसी-कैसी झांसापट्टियां देता है उसके यथार्थ को चित्रित किया गया है । एल लड़की की लागत अठारह हजार बताकर तथा उसे बादशाही खान-दान की घोषित करके तथा ऐसे और अनेक नये-नये नाम धरकर बाज़ार के छैलों से रामजीदास पैसे उलीचता रहता है । और धूर्त तो इतना कि हरेक व्यक्ति यहां समझता है कि इस नायाब चीज़ का रस बाज़ार

भर में बस उसीने चखा है । "66

इसी अध्याय में वह एक लाला से यह कहकर रूपये ऐंठता है कि उसके कारण उसकी एक लड़की को बीमारी लग गई है , जिसके आपरेशन में उसे बहुत खर्च करना पड़ रहा है । रामजीदास लाला के मुंशी को भी झांसा देकर सटक-सीताराम हो जाता है । उसने मुंशी को वादा किया था कि जो मिलेगा उसका एक बड़ा हिस्सा मुंशी को भी देगा , क्योंकि सेठ की बीमारी का संकेत मुंशी ने ही दिया था ।

हमारी इस दुनिया में कई-कई प्रकार के गोरखधंधे चलते हैं । बहुत से व्यवसाय दो नंबरी होते हैं ,परन्तु सरकार , समाज तथा लोगों को झांसा देने के लिए अन्य-अन्य प्रकार के एक नंबरी व्यवसायों की दुकानों को खोलना पड़ता है । प्रकट रूप से दुकान स्टेशनरी या किसी अन्य चीज़ की होती है , परंतु उसमें काम-धंधे तो दूसरे ही प्रकार के चलते हैं ।रामजीदास ने भी अपने व्यवसाय के लिए लोगों के संपर्क हेतु स्टेशनरी की दुकान खोल रखी है , परंतु वस्तुतः लड़कियों को सप्लाय करने के उसके सारे काले धंधे इस दुकान के माध्यम से करता है । जानकार लोग इसी दुकान में उसका संपर्क करते हैं । "दुकानदारी" नामक अध्याय में रामजीदास के इसी प्रकार के गोरखधंधों का ब्यौरा दिया है । वहां सेठ-साहूकार के मुंशी , राजे-महाराजे तथा जमींदारों के कारिन्दे और पुलिस-दरोगा के सिपाही रामजीदास के पास आते हैं और उसे कौन-सी और कैसी लड़की कहां भेजनी है उसका संकेत दे जाते हैं ।

पांचवे अध्याय "हाथ-पैर" में लेखक ने यह दर्शाया है कि इस व्यवसाय मेंकौन-कौन से लोग रामजीदास के सहायक होते हैं । लेखक के ही शब्दों में " यही उनके हाथ-पैर हैं , इन्हीं की मदद से उनके रोजगार की बैल फलती है , इन्हीं के बल पर उन्हें घर बैठे "माल" हासिल होते हैं । यही उनके हाली-मवाली हैं और ये ही उनके

अनुचर हैं , ये ही उनके यार हैं और ये ही मददगार । इन्हीं के जरिये उनकी पहुंच उन तहखानों तक हो जाती है , जहां सूरज की किरण भी जाते हुए डरती है । इन्हीं के सहारे ये लोग उन बातों को जान लेते हैं, जिन्हें सिर्फ़ ईश्वर ही जानता है । ये ही उनके हाथ-पैर हैं ।" 67

इन हाथ-पैरों में कोई आश्रम का संचालक होता है , तो कोई मंदिर का पुजारी , कोई साधु बाबा , तो कोई जमाना खाई हुई तजुर्बेकार बुढ़िया ।

"ठिकाने" नामक अध्याय में लेखक उन ठिकानों का जायजा लेता है , जहां से इन नर-पिशाचों को अपनी खपत के लिए "माल" मिलता है और ये ही जगहें इन सामानों की "मिन्ट" हैं और यहीं से उन अभागिन लड़कियों को तरह-तरह के सब्ज़ बाग दिखाकर नरक-कुण्ड में धकेला जाता है । इसी अध्याय में एक आश्रम के संचालक का जिक्र आता है , जो आश्रम की भोली-भाली लड़कियों को रामजीदास जैसे लोगों के हाथ बेच देता है । लड़की को यह लालच दिया जाता है कि किसी अच्छे घराने में उसका पुनर्विवाह करवा दिया जायेगा और फिर उस बहाने से उसे रण्डीखाने के नर्कागार में धकेल दिया जाता है । आश्रम का वही संचालक इसी अध्याय में एक स्थान पर रामजीदास से कहता है — " अनार उसका नाम है । और यहां से पांच सौ कोश दूर के एक कसबे की वह बेटी है । शादी उसकी आठ वर्ष की उम्र में हुई थी ; लेकिन पतिदेवता बचपन में ही कहीं चल दिये । पांच-छः बरस छाती पर पत्थर रखकर उसने रण्डापा काटा , लेकिन एक दिन एक दूत की नज़र पड़ गई और उसे पुनर्विवाह करवाने की लालच से उतार लिया गया । " 68

इसी अध्याय में लेखक ने बड़ी कुशलता से चित्रित किया है कि रामजीदास जैसे लोगों को लड़कियां सप्लाई करने वाले जो ठिकाने हैं , उनमें मंदिर , मठों , आश्रमों और उनसे सम्बद्ध साधु-सन्यासियों का योगदान भी कम नहीं है । लेखक ने पुरानी दिल्ली के एक मंदिर

में स्थित भगवा वस्त्रधारी तपस्वी साधु-बाबा का चित्रण इसमें किया है जो रामजीदास को नयी लड़कियां फांसकर देते हैं । निम्नलिखित कथोपकथन से यह तथ्य स्वयंमेव उजागर हो जाता है । इसमें साधु महात्मा एक प्रौढ़ा स्त्री से कहते हैं -- " भगवान की आज्ञा और आत्मा की प्रेरणा से ही मैं केवल दो मास के लिए भ्रमण के लिए निकलता हूं । इस समय में दुखियों के दुःख दूर करना ही मेरा एक मात्र उद्देश्य होता है । अब तुम स्पष्ट कहो कि तुम्हारा क्या दुःख है ?

प्रौढ़ा स्त्री ने कहा -- महाराज , यह बेचारी बहुत दुखिया है ।"

"क्या दुःख है ? "

" इसके पति बूढ़े हैं और दमे के आज़ार से बेदम रहते हैं । इस हालत में इस बेचार का जीवन भार रूप बन रहा है । इसे किसी प्रकार इस संकट से छुटकारा दिलाने की कोशिश करें ।

साधु महाराज ने कह दिया --" कल्याण होगा "

" बच्चा धनराज , तुम्हें इस लड़की का उद्धार करना होगा । " 69

कहना न होगा कि रामजीदास ही यहां धनराज बन गया है । वह घिघियाते हुए साधु बाबा से कहता है -- " महाराज , मैं अब बूढ़ा हुआ । जो कुछ समय आप जैसे संतों से बचता है , वह भगवत् भजन में लगा देता हूं । अब इस अवस्था में ऐसी जिम्मेदारी देना क्या आप उचित समझते हैं ? " 70

साधु महाराज विचार में पड़ गये । फिर कहने लगे -- "मैं सब समझता हूं धनराज ! लेकिन इस दुखिया का उद्धार मैं तुम्हारे ही हाथ से कराना चाहता हूं । तुम ही मेरे ऐसे सच्चे भक्त हो जिस पर मैं यह उत्तरदायित्व छोड़ सकता हूं । " 71

इस प्रकार वह दम के मरीज़ बूढ़े की युवान पत्नी रामजीदास के शिकंजे में आ जाती है । अंतिम अध्यांय "जनानी सवारियां" में

रामजीदास अपनी कुछ सुंदरियों को एक राजा साहब की रियासत में भेजते हुए पाया जाता है । " ये सुंदरियां महीनों से राजा साहब के गले का हार बनी हुई थीं और खुद रामजी को इस जगह कई बार आना पड़ा है । इनमें से कुछ ✱ तो अब महाराज के दिल से उतर गई हैं , कुछ को वे छक कर पी चुके हैं , जिन दो-एक से अभी तक उनका मन नहीं भरा है उन्हें रखकर बाकी को उन्होंने बिदा कर दिया और इतनी बेटियों का बाप §?§ बेचारा रामजी उन्हें बिदा कराकर ला रहा है । " 72

रास्ते में कोई पूछता है तो रामजीदास बता देता है कि वे लोग तीर्थ गये थे और वहीं से लौट रहे हैं । इस तीर्थ-यात्रा §?§ के दौरान बीच-बीच में जिन-जिन गांवों में रामजीदास अपनी जनानी सवारियों के साथ पड़ाव डालता है , वहां भी उन-उन गांव के जमीं-दारों या ठाकुर साहबों से अपने खर्चे-पानी की व्यवस्था कर लेता है । ऐसे ही एक मौके पर एक गांव के तगड़े ठाकुर साहब को ताव चढ़ाकर वह काफ़ी रूपये ऐंठ लेता है । यथा -- " तब ठाकुर साहब ने जोश में आकर संदूकची उसके सामने सरका दी और कहा -- ' जितने मरजी आये , चुनकर ले जाओ , लेकिन तुम्हारी उस जनानी सवारी के नखरे ढीले किए बगैर मुझे चैन नहीं पड़ेगा । देखें वह कितनी घमण्डी और लालची हैं । ' .... रामजी ने हज़ार रूपये के एवज़ में उस जनानी सवारी को रात भर के लिए ठाकुर साहब के सेज की ठोकरें खाने को भेज दिया । " 73

इस प्रकार इस उपन्यास में लेखक ने बुर्दाफरोश रामजीदास के माध्यम से हमारे समाज के एक घिनौने और रूग्ण स्वरूप को प्रस्तुत किया है । उपन्यास के भिन्न- भिन्न अध्यायों के अन्य पात्र तो अलग× अलग-अलग हैं , परन्तु इन सबको जोड़ने वाली कड़ी है -- रामजीदास । उसके माध्यम से ही ये अलग-अलग पात्र और घटनाएं एक उपन्यास का स्वरूप धारण करती हैं । इसमें लेखक ने हमारे समाज के नग्न यथार्थ को यथातथ्य रूप से प्रस्तुत किया है । यह इस उपन्यास की एक विशेषता या विचित्रता

है कि उपन्यास खलनायक प्रधान है । रामजीदास ही वह खलनायक है जिसके आसपास कथा के ताने-बाने बुने गये हैं । वैसे इधर के उपन्यासों में ऐसे "एण्टी हीरो" चरित्रों को लेकर कथापट को बुनने के कई प्रयास या प्रयोग मिलते हैं, जैसे "राग दरबारी" के वैद्यजी, परंतु जिस युग का यह उपन्यास है, उसमें इसे एक नवतर प्रयोग ही समझा जायेगा ।

गदर :

हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों का सूत्रपात तो प्रेमचन्द-पूर्व युग में किशोरीलाल गोस्वामी जैसे लेखकों द्वारा हो गया था । परंतु डा. भारतभूषण अग्रवाल ने गोस्वामीजी के उपन्यासों को ऐतिहासिक उपन्यासों की कोटि में न रखते हुए उन्हें ऐतिहासिक रम्याख्यान (हिस्टोरिकल रोमान्सिस) कहा है ।[74] वस्तुतः सामाजिक उपन्यासों की भांति ऐतिहासिक उपन्यासों का वास्तविक सूत्रपात भी प्रेमचन्द युग में ही हुआ है । प्रेमचन्दयुग की प्रेमचन्देतर औपन्यासिक परंपराओं में ऐतिहासिक उपन्यास की परंपरा का महत्व अपरिहार्य है । यद्यपि प्रेमचन्द युग में समस्यामूलक सामाजिक उपन्यासों की परंपरा औपन्यासिक लेखन पर सर्वाधिक रूप से हावी रही है, तथापि इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि इसका समुचित सूत्रपात प्रेमचन्द युग में ही वृन्दावनलाल वर्मा, जयशंकर प्रसाद, चतुरसेन शास्त्री प्रभृति लेखकों द्वारा हो गया था । इन लेखकों ने ऐतिहासिक उपन्यास-लेखन की परंपरा को चलाकर प्रेमचन्द युग के एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की है ।

डा. मोहनलाल रत्नाकर के शब्दों में कहें तो " उनके पूर्व हिन्दी में ऐसे श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासों का सृजन न हुआ था । उनमें ऐतिहासिक उपन्यासों की विशिष्टताओं का प्रायः अभाव मिलता है । प्रेमचन्द युग में आकर ही, वास्तविक ऐतिहासिक उपन्यास निर्मित होने लगे और उन्होंने प्रेमचन्दोत्तर युग के प्रौढ़ ऐतिहासिक उपन्यासों की अद्भुत भूमिका प्रस्तुत की । इस प्रकार हिन्दी उपन्यास जगत में एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक धारा चल पड़ी और उसके अन्तर्गत

श्रेष्ठ उपन्यासों का सर्जन हुआ । " 75

ऋषभचरण जैन द्वारा प्रणीत "गदर " उपन्यास प्रेमचन्द युग के उक्त प्रेमचन्देतर ऐतिहासिक-उपन्यास-परंपरा की एक सशक्त कड़ी है । इसका प्रकाशन सन् 1930 में हुआ था । इसमें प्रथम स्वाधीनता संग्राम की वीरकथा के एक महत्त्वपूर्ण आयाम को चित्रित किया गया है । तत्कालीन अंग्रेज सरकार ने इसे 'गदर' का नाम दिया था , परंतु आधुनिक भारतीय इतिहासकारों ने उसे स्वाधीनता-संग्राम का दर्जा दिया है । लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में अंग्रेज सरकार के अत्याचारों का लोमहर्षक चित्रण निर्भिकता के साथ किया है । स्मरण रहे कि यह उपन्यास अंग्रेजों के शासन-काल में लिखा गया है । राष्ट्रीय स्वतंत्रता और क्रांतिकारी आंदोलन से सम्बद्ध होने के कारण तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने इसे जब्त कर दिया था । अतः स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद ही उसका पुनर्प्रकाशन संभव हो सका । 1857 की क्रांति पर आधारित हिन्दी का यह प्रथम उपन्यास है ।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने नाना साहब पेशवा , अजीमुल्लाखां, रामचन्द्रराव , टीकमसिंह , दामोदरदास , बालाराव , बाबा भट्ट , तात्या टोपे तथा वीर हमीद जैसे ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से भारत के प्रथम स्वाधीनता-संग्राम की कहानी को यथेष्ट गौरवान्वित शैली में चित्रित किया है । इसके फलक में सम्पूर्ण स्वाधीनता संग्राम या अंग्रेज इतिहासकारों के शब्दों में 'गदर' (म्यूटिनी आफ सिपाही) का समग्र आकलन नहीं हुआ है ; अपितु केवल उसके एक खण्ड को इस प्रकार प्रस्तुत कर दिया गया है कि उससे समग्र संग्राम या गदर का यत्किंचित आभास मिल जाता है । इसमें दिल्ली , मेरठ , झांसी प्रभृति स्थानों की कथा को नहीं लिया गया है ; हालांकि दिल्ली, मेरठ, झांसी आदि की घटनाओं के कतिपय संकेत मिल जाते हैं । वस्तुतः प्रस्तुत उपन्यास के केन्द्र में है नाना साहब पेशवा की बिठूर स्थित छावनी और अजीमुल्लाखां ।

नानासाहब अंतिम पेशवा बाजीराव के दत्तकपुत्र और उत्तराधिकारी थे । भाग्यहीन नानासाहब अपनी पैतृक रियासत से तो तभी वंचित हो गये थे जब बाजीराव को पूना के सिंहासन से अंग्रेजों ने पदच्युत कर दिया था । बाजीराव की मृत्यु के उपरांत अंग्रेजों ने नानासाहब की पेंशन को भी बन्द कर दिया था । बाजीराव को जब पूना के सिंहासन से हटाया गया तो वे कानपुर के पास बिठूर में आ गये ।[76] नानासाहब भी उनके साथ बिठूर आ गये । वें अंग्रेज अफसरों से बड़ा मेल-जोल रखते थे । उनकी ज़िन्दादिली और आतिथ्य के चर्चे प्रायः लोगों में होते थे । वे बड़े आनंदी जीव थे और खुद खाने की अपेक्षा दूसरों को खिलाने में उन्हें अधिक आनंद आता था । बचपन में वे हर हफ्ते पचास-पचास बालकों को दावत दिया करते थे । बड़े होने पर भी उनकी यह दरियादिली और ज़िन्दादिली कायम रही और प्रतिदिन कई लोग उनके अतिथि होकर उनके यहां की रसोई का स्वाद चखते थे । परंतु अंग्रेजों पर उनकी विशेष कृपा थी क्योंकि नानासाहब अंग्रेजों की सभी बातों से , संक्षेप में कहें तो अंग्रेजीयत से बहुत प्रभावित थे । अंग्रेजों का स्वभाव , व्यवहार , पहनावा , उनकी बातचीत , सभ्यता , बुद्धिमता आदि सभी बातों से वे अभिभूत थे । " [77]

अंग्रेजों के प्रति नानासाहब की अतिव भक्ति के संदर्भ में स्वयं लेखक की टिप्पणी है — " नाना साहब राज-काज के मामले में नितान्त अयोग्य समझे जाते थे और बहादुरशाह का पतन , समकालीन न्याय में धांधलेबाजी , शासन में अव्यवस्था , मुसलमान कर्मचारियों के असह्य अत्याचार , ये सब बातें ऐसी थीं जिन्होंने एक नानासाहब ही नहीं , अधिकांश हिन्दुओं के मन में यह धारणा पैदा कर दी थी कि तत्कालीन गवर्नमेण्ट {मुगलया सल्तनत} का पूर्णतया पतन होकर उसकी जगह किसी नयी सरकार की स्थापना होना उनके और उनके देश के लिए श्रेयस्कर होगा । अंग्रेजों की कृत्रिम और आकर्षक मृदुलता और छलपूर्ण न्यायप्रियता मुकाबले में लोगों के सामने थी । अंग्रेज इसी कारण नानासाहब और उनके जैसे विश्वास वाले आदमियों के लिए आदरणीय और श्रद्धाभाजन थे । "[78]

अजीमुल्लाखां गरीब मां-बाप के बेटे थे, परंतु अपने अध्यवसाय, आकर्षक व्यक्तित्व, सुंदर देह-यष्टि, पांडित्य और महत्वाकांक्षा के बल पर नानासाहब के मंत्रीपद पर पहुंच गये थे। अंग्रेजों की सलाह पर ही नानासाहब ने अजीमुल्लाखां को अपनी पेंशन का केस लड़ने विलायत भेजा था।[79] अजीमुल्लाखां की वाक्पटुता से सभी प्रभावित तो हुए पर सब व्यर्थ हुआ, कोई सुनवाई न हुई। और तो और, जिन अंग्रेज अधिकारियों ने भारत में महीनों नाना साहब के आतिथ्य का लाभ लिया था और उनके टुकड़े चबाये थे वे भी अजीमुल्लाखां से आंखें चुरा गये और किसी प्रकार की सहायता देने में अपनी असमर्थता प्रकट की।

अजीमुल्लाखां की माता बड़ी विदुषी और समझदार स्त्री थी। यह उनके उपदेशों का ही परिणाम था कि प्रारंभ से ही अजीमुल्लाखां के हृदय में प्रचंड देशभक्ति के बीज पड़ चुके थे। बाल्यकाल के इन प्रभावों ने आगे चलकर कैसा विराट रूप धारण किया यह तो प्रत्येक इतिहास प्रेमी के सामने है। अजीमुल्लाखां के इस विराट व्यक्तित्व का एक छोटा-सा अंश प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित हुआ है।

यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि अजीमुल्लाखां को नानासाहब के पेंशन-विषयक अधिकार के लिए विलायत भेजा गया था। उसमें उन्हें कोई सफलता नहीं मिली, परंतु अजीमुल्लाखां वहां से एक नयी हवा को अपने फेफड़े में भरकर लाये। उस समय क्रिमिया युद्ध के कारण समग्र योरोप में युद्ध के बादल मंडरा रहे थे। योरोप के बड़े-बड़े देश उसमें भाग ले रहे थे। अजीमुल्लाखां इस भीषण युद्ध के कुछ दृश्यों को देखने का मोह संवरण नहीं कर सके। वहां उन्होंने जो देखाउससे उनकी आंख खुल गई। अंग्रेजों के बल और दृढ़ता की पोल भी खुल गई। वहां अपने बर्बाद और पराधीन देश का भविष्य खुले पृष्ठों की तरह उनकी आंखों के आगे स्पष्ट हो गया। उन्होंने वहां देखा कि भारतवर्ष से आया हुआ करोड़ों मन अनाज वहां संग्राम भूमि पर जमा है। उसीके बल पर अंग्रेज फ्रांसीसी सैनिकों को खरीदे हुए थे। उसीके बल पर वे युद्ध भूमि पर

अपनी अक्षत शक्ति बनाए हुए थे । भारतवर्ष से छीनी हुई रोटी से ही उन्होंने योरोप भर में अपना आतंक जमाए रखा था । तब अजीमुल्लाखां की आंखों के सामने लंदन के वैभवशाली होटल और भारत के गरीब हल चलाने वाले , फटे हाल किसानों के चित्र आने लगे । तब अजीमुल्लाखां ने देश की जड़ में लगे हुए उस कीड़े को पहचाना और भारत का खून पीने वाले अंग्रेजों को उन्होंने जोंक की शक्ल में देखा ।

तब माता के उपदेशों के उर्मिल भाव , पूर्वजन्म के संस्कार तथा मातृभूमि की रक्षा करने का संकल्प ये तीनों भाव उनमें एक साथ ही प्रज्वलित हो उठे । दरकती हुई युद्ध भूमि में असंख्य नरमुण्डों और रक्त की भीष्म वर्षा के बीच खड़े होकर उस वीर ने मातृभूमि को स्व-तंत्र करने की भीष्म प्रतिज्ञा की और क्रांति तथा विद्रोह की प्रचण्ड भावनाओं को लेकर उन्होंने भारत में पदार्पण किया ।

इधर भारत में भी भीतर ही भीतर क्रांति की एक आग सुलग रही थी । अजीमुल्लाखां ने इस आग को देखा और संतोष की सांस ली । दोनों तरफ एक ही लपट थी , अतः क्रांतिकारी उनसे मिले और वे वे उनसे । उन्हें उन क्रांतिकारियों में क्रांति और विद्रोह के बीज बोने के लिए उपयुक्त क्षेत्र मिल गया । उन्होंने भारत में क्रांतिकारियों की गतिविधि में भयंकर तेजी पैदा कर दी और बड़ी सतर्कता और साहस के साथ एक जबरदस्त देशव्यापी क्रांति की योजना में वे पूरी तरह से निमग्न हो गये ।

इधर अजीमुल्लाखां अंग्रेज सरकार के खिलाफ़ क्रांतिकारियों के साथ मिलकर योजना बना रहे थे , उधर नानासाहब को अंग्रेजों की मित्रता और न्याय पर विश्वास था और वे अभी भी अंग्रेजों को अपने हितैषी समझ रहे थे । वे अंग्रेजों की आवभगत के लिए हमेशा उद्यत रहते थे । उपन्यास का प्रारंभ ही एक ऐसे प्रसंग से होता है जिसमें नानासाहब ने कानपुर से सेनापति व्हीलर कैप्टन हिल सर्डन तथा अन्य बड़े अफ़सरों को न्यौता दिया था पर मेरठ में हुए दंगे के कारण वे लोग आते नहीं

है । फलतः नानासाहब को बहुत निराशा होती है । नानासाहब यह कल्पना ही नहीं कर सकते थे कि मेरठ के वे तुच्छ सिपाही न्यायमूर्ति तथा प्रतापी अंग्रेजों ~~के~~ का बाल भी बांका कर सकते हैं । अतः मेरठ की घटना को बहुत सामान्य-सी बताते हुए वे कहते हैं — " मालूम होता है मेरठ की कोई साधारण घटना विराट रूप लेकर कानपुर पहुंची है । " [80]परन्तु अजीमुल्लाखां मेरठ की घटना से बहुत प्रसन्न हैं । नानासाहब द्वारा यह पूछने पर कि क्या व्हीलर साहब बहुत चिंतित हैं , अजीमुल्लाखां कहते हैं — " चिंतित ? अजी होश उड़ रहे हैं !! रूसवालों से लड़ते वक्त भी गोरों के चेहरे मैंने ऐसे भयग्रस्त नहीं देखे जैसे अब । बेचारा बूढ़ा व्हीलर * अवश्य कुछ गंभीर है और तो सब बस । " [81] उक्त घटना से ही नानासाहब तथा अजीमुल्लाखां के व्यक्तित्व एवं चरित्र पर प्रकाश पड़ता है ।

नानासाहब अंग्रेज अधिकारियों से कितने दबते थे इसका प्रमाण तो उपन्यास की प्रारंभिक घटना से ही मिल जाता है , जिसमें कर्नल टामसन की कन्या लिली के झूठे अभियोग पर अपने विश्वसनीय साथी रामचन्द्र राव को वे तीन वर्ष के कारावास का दण्ड देते हैं । नानासाहब की आंखें तो तब खुलती हैं जब अंग्रेज सरकार का एक छोटा-सा अधिकारी चार्ल्स नानासाहब की बेटी ~~xxxx~~ मैना के साथ अभद्र व्यवहार करता है और वह न्यायप्रिय अंग्रेज ~~xxxxxx~~ सेनापति उसे दण्डित करने में टालमटोल की नीति अपनाता है । मैना क्रांतिवीर अजीमुल्लाखां से प्रेम करती है । मैना ही नाना के मन में अंग्रेजों के खिलाफ़ आग भड़काने का महत्वपूर्ण कार्य करती है । वह नाना से उत्तेजना के स्वरों में कहती है — "बाबा तुमने इन अंग्रेजों की हद से ज्यादा खातिरें करके अपना मान खो दिया । तुम उन्हें अपना मित्र समझते हो , वे तुम्हें अपना गुलाम समझते हैं । बाबा तुम बड़े अंधेरे में हो । " [82] मैना के ये उत्तेजक तेजाबी शब्द नानासाहब के सुषुप्त आत्माभिमान को जगाने का कार्य करते हैं । मैना ठीक उसी समय प्रहार करती है जब लोहा गर्म था , क्योंकि कई दिनों से नानासाहब के मन में यही बात उठ रही थी । अंग्रेजों की न्यायप्रियता के संबंध में उनका मन अब संदिग्ध हो चला था । वे प्रायः सोचते रहते थे

कि एक साधारण अंग्रेज लड़की से ज़रा-सी बात कह देने पर मैंने अपने आदरणीय मित्र को कठोर दण्ड दिया । एक क्षण की भी देर न की और मेरी प्यारी बेटी का अपमान करने वाले एक मामूली गोरे को दण्ड देने में सेनापति अन्यमनस्कता प्रकट कर रहे हैं । क्या मैं उस नीच गोरे से भी गया-बीता हूं ? क्या सेनापति मेरा इतना आदर भी नहीं करते ?

नाना के भीतर अंग्रेजों के खिलाफ़ यह अंतर्द्वन्द्व चल ही रहा था कि मैना एक और शाब्दिक प्रहार करती है :- " बाबा ! तुम हिन्दुस्तानी हो । अंग्रेज हिन्दुस्तानियों को कभी मित्र नहीं समझ सकते । यह सब समय का प्रभाव है । एक समय था जब अंग्रेज भारत-वासियों के पैरों की खाक चाटते थे , आज हमारी रोटी छिनकर हमें दुरदुराते हैं । बाबा इन पापियों ने तुम्हारी रियासत छीनी , गद्दी छीनी , पेंशन छीनी । तुम इनकी तोताचश्मी का हाल अजी-मुल्लाखां से सुन ही चुके हो , और तब भी तुम उन्हें मित्र बनाने को उत्सुक रहते हो ? तुम्हारा माल खाने के लिए चाहे ये लोग मित्र बनें , परन्तु याद रखो , अपने कुत्ते से भी कम ये लोग तुम्हारा आदर करते हैं , और हाथ पर चलती हुई चिंटी से कम तुम्हारी परवाह करते हैं ! " 83

प्यारी बेटी मैना के इन उत्तेजक शब्दों के प्रत्युत्तर में नानासाहब जब कुछ अस्फूट शब्दों में बोलते हैं कि अजीमुल्लाखां आवे तो पता लगे , अभी कुछ कहा नहीं जा सकता । इस पर मैना दांत पीसते हुए कहती है -- " बाबा ! तुम मेरे पिता क्यों हुए ? तुम मेरा अनादर करने वाले को दण्ड देने की शक्ति नहीं रखते तो लो मेरा गला घोंट दो । मैं अपने जीते जी अपना यह अपमान नहीं सह सकती । बाबा , तुम्हें शिवबाबा की याद नहीं आती क्या ? " 84

लेखक ने नानासाहब में हो रहे आंतरिक परिवर्तन का बड़ा ही सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है । नानासाहब के

इस द्वन्द्व को हम उनके निम्न उद्‌गारों में देख सकते हैं — " मेरी बेटी का अपमान करने वाले एक साधारण सैनिक को दण्ड देने में ऐसी शिथिलता ? मेरे साथ ऐसा दुर्व्यवहार ? तो क्या सब धोखे की टट्टी है ? क्या यह मेल-मुलाकात , आदर-अभ्यर्थना सब कृत्रिम है ? ... क्या सचमुच ये लोग मुझे कुत्ता समझते हैं ? ... अच्छा , अजीमुल्लाखां आये तब .... " 85

अंग्रेज सेनापति उस सामान्य अधिकारी को दण्ड देना तो दूर , क्षमा कर देता है और बात को आयी-गयी करने हेतु उसे इलाहाबाद भेज देता है । इस पर नाना अत्यंत क्रोधित हो जाते हैं । नाना के क्रोध की तीव्रतम अवस्था को लक्षित करके अजीमुल्लाखां सही वक्त पर मानो नाना के चेतना-तंत्र पर प्रहार करते हैं — " महाराज ! कहने लगा चार्ल्स (वह गोरा) निरपराध है । मैंने कहा , निरपराध कैसे हैं है ? आपके सामने ही तो उसने अपना अपराध स्वीकार किया था ? सेनापति ने कहा - जो कुछ उसने वहां स्वीकार किया था , वही उसने यहां भी स्वीकार किया , परन्तु नानासाहब की लड़की से उसने जो कुछ कहा , उसकी इच्छा और उसका रूख देखकर । प्रेमी-प्रेमिकाओं के लिए यह बातें क्षन्तव्य हैं । नानासाहब पहले अपनी लड़की का चरित्र सुधारें , तब किसीको दण्ड दिलाने की सिफारिश करें । मैं तो महाराज , न अधिक कह सका , न अधिक सुन सका । एक बार जी में आया पिस्तौल निकालकर एक ही फायर में इस बूढ़े को खतम कर दूं ... लेकिन कुछ सोचकर रह गया । ओफ ! इन लोगों का ऐसा साहस ? इन बदमाशों की ऐसी नीचता !! याद है , महाराज , इसी कमरे की घटना है , ज़रा-सी बात पर रामचन्द्रराव कारागार का दण्ड भोग रहा है ! इन फिरंगियों की न्याय की कलई आप पर खुल गई न ? ओफ ! " 86

अजीमुल्लाखां के इन शब्दों को सुनकर नानासाहब उछलकर खूंटी से लटकती हुई तलवार उतार लेते हैं और शेर की तरह गरजते हुए बोलते हैं — " अगर यह तलवार सेनापति का सिर न काटे और और मैं उस पापी चार्ल्स के कलेजे का खून न पीऊं , तो शिवाजी की

संतान नहीं । चलो अजीमुल्लां पहले व्हीलर का सिर काटूंगा । " 87

अजीमुल्लाखां यही चाहते थे । नानासाहब को क्रांति के पक्ष में लेकर उन्होंने कानपुर पर धावा बोल दिया और कानपुर को अंग्रेज सत्ता से मुक्त कराकर नानासाहब को महाराजाधिराज बना दिया । 5 जून 1857 का वह दृश्य बड़ा ही भयावह और लोमहर्षक था -- " उसके लिए प्रलय और नर्क की कल्पना ज़रा भी भयप्रद , उद्वेगजनक या आश्चर्यकर नहीं होगी । उस दिन कानपुर में हजारों मन खून बहा और हवा में उड़कर फुर्र हो गया । उस दिन देशी सेनाओं ने भीषण प्रतिहिंसा से उन्मुक्त होकर खून की होली खेली , और गोरों का सिर काट-काट कर अपना कलेजा और शरीर तर किया । उस दिन सिपाही अपने बीबी , बच्चे और प्राणों को भूल स्वतंत्रता की बलिवेदी पर मरमिटने को जूझ पड़े । उस दिन सिपाही फिरंगियों का , उनके मकानों का , उनके गिरजों का और उनके प्रत्येक चिह्न का नामोनिशान मिटाने को भयंकर रूप से बौखला उठे । चारों तरफ भीषण मारकाट , चिख-चिल्लाहट और तोप-बंदूकों की गड़गड़ाहट के सिवा कुछ सुनाई नहीं पड़ता था । मिनट-मिनट पर आदमी मरते थे । क्षण-क्षण पर सिपाही धराशायी होते थे । उस दिन मनुष्य के अनिर्वचनीय मूल्यवान जीवन का मूल्य मुफ़्त से भी सस्ता था । सर्वत्र भयंकर कोलाहल और अशांति का साम्राज्य था । " 88

भयंकर रक्तपात के बाद कानपुर पर नानासाहब का कब्जा होता है । अंग्रेज सिपाही तथा अधिकारी और उनके बीबी-बच्चे जो अस्पताल में जा छिपे बैठे थे , उन्होंने अन्ततः आत्मसमर्पण कर दिया । सभी को सुरक्षित ढंग से सती-चौरा घाट पर पहुंचाया गया । इतिहास में इसे "सतीचौरा घाट " कांड कहा गया है । 27 जून 1857 का दिन था । सभी अंग्रेज अपने बीबी-बच्चों सहित नावों में बैठ गये । तब अजी-मुल्लाखां ने सेनापति को कहा कि आपको हमारे महाराज ने याद किया है । सेनापति के साथ सभी अंग्रेज सिपाही तथा अधिकारी नावों से उतरने को उद्यत हो जाते हैं , परंतु सेनापति उन्हें वहीं रूकने का आदेश देता है । सेनापति के लौटने में देर होने पर गोरे सैनिक नावों से कूद

पड़ते हैं । फलतः बंदूकें और तोपें उन पर दाग दी जाती हैं । नावें उलट जाती हैं । स्त्री , बच्चों , वृद्धों और रोगियों की बड़ी दुर्दशा होती है । वे नदी में डूब जाते हैं । किनारे के अधिकांश गोरे सिपाही बंदूकों और तोपों के शिकार हो जाते हैं । तभी सेनापति व्हीलर अचानक अजीमुल्लाखां के हाथ से तलवार छिनकर उसे अपने गले पर फेर देता है । अजीमुल्लाखां उस वृद्ध सेनापति के मुर्दे शरीर को श्रद्धापूर्वक देखता रह जाता है ।

इस प्रकार पहले तो अजीमुल्लाखां और नानासाहब जीतते हुए दिखाई पड़ते हैं , परंतु बाद में बाजी धीरे-धीरे अंग्रेजों के पक्ष में होती जाती है । ज्वालाप्रसाद और बालाराव दोनों अंग्रेजों से हार जाते हैं । फतेहपुर फिरंगियों के कब्जे में चला जाता है । अजी-मुल्लाखां पागल से होकर कानपुर छोड़ देते हैं । नानासाहब अपने कुछ चुने हुए वीरों को लेकर 16 जुलाई को दिनभर लड़ते रहते हैं । रातभर खून की होली खेली जाती है । नानासाहब तथा उनके वीर सिपाहियों ने अपने प्राण संगीनों की नोंक पर रखकर फिरंगियों का नाश किया । खूब घमासान युद्ध हुआ । नानासाहब खुद घोड़े पर सवार होकर फिरंगियों की सेना में घुस गये और सबके सामने से गोरे चार्ल्स को उठाकर वापिस आ गये । चार्ल्स की छाती को फाड़कर उसका रक्तपान किया । पर अंत में अंग्रेजों की बंदूकों और तोपों के सामने नानासाहब तथा उनके आज़ादी के दीवाने सिपाही अधिक टिक नहीं सके । अपनी प्रतिज्ञा को पूरी करके नानासाहब कहीं गायब हो गये ।

इस संबंध में अंग्रेज इतिहासकारों ने लिखा है -- " नानासाहब अपने कुटुंबीजनों को लेकर रातोंरात पलायन हो गये । उस अंधेरी रात में भी स्वामीभक्त पुरुषों का जमाव हो गया था , तब नानासाहब ने नाव के एक किनारे पर दीपक जलाते हुए अपने स्वामीभक्त लोगों को कहा था-- " मेरे जांनिसार भाइयो , मैंने आपके असंख्य मित्रों और संबंधियों का खून बहाया , मेरे ही कारण आपके धन और शांति की क्षति हुई , मेरे ही कारण आपकी स्त्रियों का अपमान हुआ और अब मेरे ही कारण

आपमें से बहुतों को फांसी पर लटका दिया जायेगा । मैं इस दृश्य को अपनी आंखों से देखना नहीं चाहता , इसीलिए गंगा में डूबकर अपना और अपने कुटुंब का खात्मा किए देता हूं । जब हमारी नाव डूबेगी तब दीपक बुझ जायेगा । आप लोग हमें क्षमा प्रदान करें । " [89]

परंतु परिशिष्ट में एक घनघोर जंगल में नानासाहब और अजीमुल्लाखां को एक झोंपड़ी में साथ-साथ रहते हुए बताया है । इससे अंग्रेज इतिहासकारों की उस धारणा को ही पुष्टि मिलती है कि नानासाहब अपने लोगों की आंखों में धूल झोंककर अपने प्राणों को बचाते हुए कहीं अदृश्य हो गये । उपन्यास के अन्त में मैना का अग्निस्नान तथा अजीमुल्लाखां की आत्महत्या की घटनाओं को बताया है । यह अंतिम दृश्य बड़ा ही लोमहर्षक है । अजीमुल्लाखां कातर होते हुए कहते हैं — " मैना प्यारी मैं आया । तब उन्होंने दायें हाथ में कटार ली , बायें हाथ से सिर के बाल कसकर पकड़े और एक बार फिर फिरंगियों का नाश हो कहकर कटार जोर से गरदन पर फेर ली !! एक हाथ में अपना कटा सिर था, दूसरे में कटार और रक्त की तीन लंबी मोटी पिचकारियां छूट रही थीं !! इसी अवस्था में वे दहकती हुई चिता में जा पड़े !!! " [90]

गदर की असफलता के बाद अंग्रेजों ने हिन्दुस्तानियों से प्रतिशोध लेने में किसी प्रकार की कसर न रखी । अनेक निर्दोष लोगों को फांसी दी गई । "बीबीघर" की ज़मीन पर खून का एक बड़ा धब्बा था । अंग्रेजों को संदेह था कि यह खून गोरी मेमों और बच्चों का है । अतः अनेक ब्राह्मणों को लाकर , जिन पर विप्लव में हिस्सेदारी का संदेह था , उन्हें उस खून को ज़बान से चाटने और फिर झाडू से धोकर साफ करने की आज्ञा दी गई और तत्पश्चात् उन्हें फांसी दे दी गई ।[91]

उस समय के एक अंग्रेज अफसर ने इस हत्याकांड का लोमहर्षक वर्णन इन शब्दों में किया है — " मैं जानता हूं कि फिरंगियों के खून को छूने और मिट्टी को झाडू से साफ करने में एक उच्च जाति का हिन्दू पतित हो जाता है । केवल इतना ही नहीं , चूंकि मैं यह

जानता हूं , इसीलिए मैं उनसे ऐसा करवाता हूं । जब तक हम उन्हें फांसी देने से पहले उनके समस्त धार्मिक भावों को पैरों तले न कुचल देंगे तब तक हम पूरा बदला नहीं ले सकते , ताकि उन्हें यह संतोष न हो सके कि वे हिन्दू धर्म पर कायम रहते हुए मरे । " [92]

इस संदर्भ में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने "इण्डियास क्वेस्ट " नामक ग्रंथ में लिखा है -- " एन इंग्लिश जनरल , नेइल , हू मार्च्ड फ्रोम अल्हाबाद टू कानपुर , इज सेइड टू हेव हेंग्ड पिपुल ओल एलोंग द वे , सील हार्डली ए ट्री रीमेइण्ड बाय द रोडसाइड व्हीच हेड नोट बीन कनवर्टेड इण्टु ए गिबेट , प्रासपरस विलेजीज वेर रुटेड आउट एण्ड डिस्ट्राइड. इज इज ओल ए टेरिबल एण्ड मोस्ट पेइनफुल स्टोरी , एण्ड आई हार्डली डेर टेल यु द ओल द बीटर ट्रुथ. इफ नानासाहेब हेडबीहेव्ड बार्बरसली एण्ड ट्रीचरसली , मेनी एन इंग्लिश ओफिसर एक्सिडेड हिज बार्बरिटी ए हन्ड्रेड फोल्ड. इफ मोब्ज आफ म्युटिअन्स इण्डिन सोल्जर्स , विथआउट आफिसर्स ओर लीडर्स , हेड बीन गिल्टी आफ क्रुएल एण्ड रिवोल्टींग डीड्इस , द ट्रेइण्ड ब्रिटिश सोल्जर्स , लेड बाय धेर आफिसर्स एक्सिडेड धेम इन क्रुएल्टी एण्ड बार्बरीटी. आई डुनोट वान्ट टु कम्पेर द टू. इट इज़ ए सोरी बीजनेस ओन बोथ साइड्ज, बट अवर पर्वटेड हिस्टरीज़ टेल अस ए लोट अबाउट द ट्रिचरी एण्ड क्रुएल्टी ओन द इण्डियन साइड , एण्ड हार्डली मेन्शन द अधर साइड. इब इट इज़ ओल्सो वेल टु रिमेम्बर धेट द क्रुअल्टी आफ ए मोब इज़ नथिंग कम्पेर्ड टु द क्रुअल्टी आफ एष ओर्गेनाइज्ड गवर्नमेण्ट व्हेन इट बिगिन्स टु बीहेव लाइक ए मोब. इवन टूडे इफ यु गो टु मेनी आफ द विलेजिज इन अवर प्रोविन्स यु विल फाइण्ड धेट द पिपुल हेव स्टील गोट ए विविड एण्ड घास्टली मेमरी आफ द होरर्स धेट बीफेल धेम ड्युरिंग द क्रसिंग आफ द रिवोल्ट. " [92]

उपर्युक्त कथन से अंग्रेजों की क्रूरता एवं बर्बरता स्पष्ट होती है तथा उनकी न्यायप्रियता की कलई भी खुल जाती है । इस विषय-वस्तु को लेकर तथा अजीमुल्लाखां के चरित्र को केन्द्रस्थ रखते हुए राम-कुमार भ्रमर ने भी एक उपन्यास लिखा है , परंतु स्वातंत्र्योत्तर काल

में इस विषय पर लिखना और अंग्रेजी शासन के समय में इसको लिखना इन दोनों में आसमान-ज़मीन का अंतर है । लेखक का यह प्रयास उनके दुस्साहस को भी सिद्ध करता है । दूसरे ऋषभचरण जैन के इस उपन्यास में लेखकीय तटस्थता का निर्वाह भी हुआ है , क्योंकि उन्होंने स्वामीभक्त अंग्रेज सिपाहियों का तथा सेनापति व्हीलर की जां-बाजी और दिलेरी की भी सराहना की है ।

प्रसिद्ध लेखक भिक्खुजी ने इस स्वाधीनता-संग्राम के संबंध में सम्प्रति ही लिखा था — " ब्रिटिश शासन से मुक्ति के लिए आजादी की पहली लड़ाई मंगलपाण्डे के विद्रोह से उत्तरप्रदेश के मेरठ से शुरू हुई । विद्रोह की यह आग भड़की तो झांसी , लखनऊ और कानपुर तक प्रचण्ड रूप से फैल गई । विद्रोहियों ने मुगल वंश के बूढ़े दुर्बल शासक के झण्डे को ऊंचा किया । इस लड़ाई में हिन्दू-मुसलमान एक होकर जूझे अपनी गंगा-जमुनी संस्कृति की रक्षा के लिए । " [93]

भिक्खुजी के उक्त कथन की पूर्ति उपन्यास में निरूपित इस तथ्य से हो जाती है कि विप्लव की समग्र योजना में अजीमुल्लाखां का मस्तिष्क कार्य करता था । अतः स्वाधीनता-संग्राम से सम्बद्ध यह उपन्यास उसके एक अंश को रूपायित करता है । विप्लव का यह अंश प्रकटतः नाना-साहब से सम्बद्ध है , तथापि प्रस्तुत उपन्यास में उपन्यास का नायक नानासाहब न होकर अजीमुल्लाखां है ऐसा स्पष्टतया प्रतीत होता है ।

सत्याग्रह :

"सत्याग्रह" उपन्यास को स्वयं ऋषभजी ने "राजनैतिक" कहा है । परन्तु उसे निकट इतिहास पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास भी कहा जा सकता है । ऐतिहासिक उपन्यासों में अपेक्षित तटस्थता तथा निरपेक्षता के इसमें दर्शन होते हैं । उपन्यास की भूमिका के रूप में आये "प्रारंभिक" में लेखक ने काफी ऐतिहासिक जानकारियां और मालूमात

दिए हैं जिनसे लेखक के एतद्विषयक ज्ञान का परिचय मिलता है तथा उपन्यास-लेखन के पूर्व उन्होंने जो श्रम लिया है उससे उनकी प्रामाणिकता तथा निष्ठा प्रमाणित होती है ।

प्रस्तुत उपन्यास गांधीजी की दक्षिण-अफ्रिका-यात्रा पर आधारित है । यह वही यात्रा है जिसने "मोहनदास" का महात्मा के रूप में रूपांतरण किया है । गांधीजी जब दादा अब्दुल्ला के वकील के रूप में दक्षिण अफ्रिका गये तो उनके साथ भी वहां के गोरों ने बड़ा बुरा व्यवहार किया । "नेटाल पहुंचने पर गांधीजी ने जैसा भयानक कष्ट पाया , और गोरों ने पद-पद पर उन्हें जैसा अपमानित किया -- उससे उनके हृदय पर सहसा बड़ा भयानक धक्का लगा । गांधीजी को रेल के पहले , दूसरे दरजे में न बैठने दिया गया , और कई जगह नर-पशु गोरों ने उन महापुरुष को खूब पीटा भी । और इस तरह गांधीजी ने भारतीयों की परिस्थिति का अच्छी तरह अनुमान और अध्ययन कर लिया । और सच पूछिए तो सत्याग्रह का अंकुर भी यहीं से फूटा ।। " 94

सत्याग्रह सत्य की सिद्धि का सच्चा मार्ग है । गांधीजी ने इसे केवल एक आत्मदर्शन तक सीमित न रखते हुए एक औजार के रूप में इस्तेमाल किया जिसके तहत सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक विषमताओं के विरूद्ध एक जिहाद छेड़ी जा सकती है । गांधीजी ने सत्याग्रह आंदोलन की शुरुआत दक्षिण आफ्रिका से की है , यह एक इतिहास प्रसिद्ध घटना है । इसी आंदोलन को यहां लेखक ने उपन्यास का आधार बनाया है । आफ्रिका में शुरु होने वाले इस अहिंसक आंदोलन ने अफ्रिका स्थित भारतीयों की समस्याओं को तो सुलझाया ही , स्वयं गांधीजी का व्यक्तित्त्व इसमें कुंदन की तरह ~~खिरकर~~ निखरकर सामने आया । गांधीजी ने यहां अपने को अनेक संकटों में डालकर मानो स्वयं की ही परीक्षा ली और अन्ततः सत्याग्रह की इस परीक्षित शक्ति से आश्वस्त होकर वे भारत लौटे ।

उपन्यासकार ने बहुत रोचक ढंग से गांधीजी के अफ्रिका के अनुभवों को औपन्यासिक रूप दिया है । अफ्रिकावासी भारतीयों की तकलीफों और उन पर हो रहे अंग्रेजों के अत्याचारों ~~केxअत्य~~ को रूपायित करने के लिए

लेखक ने अनेक मार्मिक सन्दर्भों और घटनाओं की सृष्टि की है । अंग्रेजों की नृशंसता के सन्दर्भ में एक स्थान पर लेखक का कथन है — " ओफ ! नृशंसता की पराकाष्ठा ! पशुता की चरमसीमा !! कोई बताये रोम के नीरो , फ्रांस के लुई और रूस के जार के जुल्म की इसके आगे क्या बिसात थी ? ... कोई बताये , ईसा मसीह के पैरोकार गोरों की दया उस समय किस खेत में चरने चली गई थी ? कोई बताये , किस देश के इतिहास में एक निर्बल शरीर , निस्सहाय , निरपराध व्यक्ति पर इस प्रकार गैरकानूनी , अनुचित , नृशंस और मनुष्यताहीन आक्रमण हुआ था । " 95

भारतीय दलालों के चकमे में आकर भारत के गरीब , अनपढ़ , मजदूर और छोटे किसान तथा कारीगर दक्षिण आफ्रिका के नेताल में आ जाते थे । उन्हें पहले अनेक सब्ज़-बाग दिखाए जाते थे , परंतु यहां उनकी बड़ी बुरी दशा होती थी , उनके साथ जानवर से भी बदतर व्यवहार किया जाता था । वे अपनी रीति-नीति , धर्म-कर्म सब भूल जाते थे । उनकी स्त्रियों और वेश्याओं में कोई अन्तर न रह जाता था । इस सन्दर्भ में नेताल के मूढ़ , अहंकारी , प्रेसीडेण्ट क्रूगर के निम्न उद्‌गार देखिए — " आप इस्माइल की औलाद हैं , और ईसा की औलाद की गुलामी करना आपके भाग्य में है । इसलिए जो-कुछ थोड़े-बहुत अधिकार हम आपको दें , आपको उनके लिए ही हमारा कृतज्ञ होना चाहिए । "96 वस्तुतः इनगिरमिटिया[97] मजदूरों की पशुवत और दयनीय स्थिति से ही गांधीजी को अपने देशके हरिजन-चमारों की स्थिति का तथा उनके साथ हो रहे अमानवीय व्यवहारों का यथार्थ ज्ञान होता है । क्या प्रेसिडेण्ट क्रूगर और मनु की व्यवस्था में कोई अन्तर है ? इन्हीं कारणों से प्रेरित होकर गांधीजी ने भारत लौटने पर अपने आंदोलन के मुद्दों में अछूतोद्धार को विशेष अहमीयत दी थी । वे अस्पृश्यता को भारतीय समाज का एक कलंक समझते थे , परंतु उसके मूल में हैं वे अनुभव जो उन्हें दक्षिण-अफ्रिका में प्राप्त हुए । इन अनुभवों के कारण ही उनकी प्रबल संकल्प शक्ति अहिंसक युद्ध और सत्याग्रह के प्रति अटूट आस्था में परिवर्तित होती गई ।

इस राजनीतिक उपन्यास में महात्मा गांधी के अफ्रिका पहुंचने

वहां ब्रिटिश सरकार और पूंजीवाद के विरूद्ध किए गए सत्याग्रह , उसमें मिली सफलता और उसके उपरान्त उनके स्वदेशागमन आदि घटनाओं को लिया गया है । ऐसा प्रतीत होता है कि सत्य और अहिंसा से सम्बद्ध गांधीजी के जो विचार हैं उनके प्रति लेखक के मन में गहरी आस्था है , अतः उन सिद्धान्तों की विशद व्याख्या हेतु ही लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास के तानों-बानों को बुना है । इस उपन्यास में जहां एक तरफ अंग्रेजों के अमानुषी अत्याचारों , हिंसक क्रिया-कलापों और अन्याय का यथार्थ चित्रण हुआ है ; वहां दूसरी तरफ महात्मा गांधी के सत्य और अहिंसा के उच्च आदर्शों , मानवीय धर्म तथा अन्ततः सत्य की विजय का आकलन हुआ है । लेखक हिंसा पर अहिंसा की , दनुजत्व पर मनुजत्व की , अन्याय पर न्याय की विजय घोषित करते हुए सच्चे मानवीय मूल्यों के प्रति अपनी निष्ठा को अभिव्यक्ति देता है । वह असद्वृत्तियों के प्रति आक्रोश और उपेक्षा का भाव जगाते हुए सद्वृत्तियों के प्रति लोगों के मन में आकर्षण का भाव पैदा हो ऐसी अपनी मनोगत इच्छा प्रकट करता है । उनका यह उपन्यास राष्ट्रीय जागरण की भूमिका प्रस्तुत करते हुए देशवासियों को अन्याय तथाअनैतिकता और मानवीय शोष ण के खिलक्फ खिलाफ़ लड़ने की प्रेरणा देता है ।

"सत्याग्रह" की कर्मभूमि है दक्षिण-अफ्रिका का डर्बन शहर । दादा छुइलक× अब्दुल्ला , गांधीजी , टामसन , हर्बर्ट , क्ष्मि मि. एस्कम्ब , मि. लाटन , मि. टैटम , मिसेज एलेक्जेण्डर , हैमण्ड , वायसराय चैम्बरलेन , क्रुगर , अहमदअली , अब्दुलगनी तैयब , सेठ हाजी हबीब , जनरल स्मट्स , मीर आलम , गोखले , वेलिंग्टन आदि मक्ष×क्ष×ष्चित्रम× पात्रों का चरित्र-चित्रण बिलकुल यथार्थ ढंग पर हुआ है । गांधीजी ने सत्याग्रह के आधार पर ही यहां के दीन-हीन लोगों की सब समस्याओं का समाधान किया । सत्य और अहिंसा पर आधारित "सत्याग्रह" की इस लड़ाई में अन्ततः धूर्त-शिरोमणि तथा पाजी और झूठे जनरल स्मट्स की हार होती है । 30 जून 1914 ई. को भारतीयों की लगभग सभी बातें मान ली जाती हैं । तीन पौंड का कर रद्द होता है , उनके विवाह जायज माने जाते हैं और महापुरुष गांधी को इस अभूतपूर्व सत्याग्रह युद्ध में शानदार विजय मिलती

है । उपन्यास के अंत में लेखक अपनी संकेतात्मक शैली में लिखता है -- " आठ वर्ष तक दक्षिण-अफ्रिका में इस युद्ध का एक छोटा-सा खेल खेलकर कृष्ण की सम-दृष्टि का यह अवतार भारतभूमि के सत्याग्रह-संग्राम में जुट गया । " [98]

इस उपन्यास के सन्दर्भ में डा. मोहनलाल रत्नाकर के निम्न विचार ध्यातव्य हैं -- " ' सत्याग्रह ' उपन्यास का कथानक सुगठित तथा प्रभावपूर्ण है । उसमें तत्कालीन राजनीतिक जीवन की गतिविधियों का यथार्थ निरूपण हुआ है । उसे गति देने में संवादों का विशेष सहयोग लक्षित होता है , उसीसे उसमें नाटकीयता का संचार भी हो गया है । लेखक अपने पात्रों का चरित्र-चित्रण विश्लेषणात्मक तथा नाटकीय विधियों द्वारा करने में पर्याप्त सफल रहा है । उसकी भाषा-शैली मौलिक , प्रवाहमयी , तथा विषयानुसारिणी रही है । उसमें पाठकों को अपने साथ बहा ले जाने की शक्ति विशेष रूप से मिलती है । " [99]

मन्दिर-दीप :

"प्रेम" एक ऐसा विषय है , जिस पर न जाने कबसे लिखा जा रहा है और कब तक लिखा जायेगा । संसार का कोई भी लेखक या कवि न होगा जिसने इस विषय पर कुछ न कहा होगा । प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने हमारे समाज के युवक-युवतियों के प्रेम पर एक दृष्टिपात किया है । सच्चा प्रेम , निःस्वार्थ और निर्व्याज प्रेम बहुत कम देखने में आता है , क्योंकि कबीर के शब्दों में यह खाला का घर नहीं है , उसमें मस्तक को पहले उतारना पड़ता है । जनककुमार और रानी का प्रेम इस कोटि में आता है । अपने इस प्रेम के लिए वे बड़े से बड़ा त्याग कर सकते हैं , अपने प्राणों को संकट में डाल सकते हैं । दूसरी तरफ प्रेम का एक छद्म-रूप भी होता है , वासनात्मक प्रेम , शरीरी प्रेम । जहां उच्च-भूमि पर आधारित प्रेम समाज में सुख, शांति और पवित्रता का संचार करता है ; वहां वासनात्मक प्रेम व्यभिचार का रूप धारण करके सामाजिक जीवन को कलुषित बना देता है । जनककुमार और रानी जहां आदर्श और उच्च प्रेम के प्रतीक हैं, वहां

वासनात्मक प्रेम की अभिव्यक्ति नागरदास के चरित्र द्वारा हुई है । नागरदास एक व्यभिचारी व्यक्ति है और अपने देह की हवस को मिटाने के लिए नित्य नवीन युवतियों को फांसने के फिराक में रहता है ।

रानी के पिता दिनकरनाथ भी एक सच्चे प्रेमी और सज्जन व्यक्ति हैं । लक्ष्मी और सरस्वती का ऐसा बढ़िया संगम बहुत कम देखने को मिलता है । उन्होंने एक सुशील ~~xxx~~ स्त्री से विवाह किया था । कुल मिलाकर एक दर्जन प्रसव हुए थे और इन सबमें एक रानी ही बची थी , पर उसके जन्म के कुछ ही घण्टे बाद उसका प्राणान्त हो गया । स्वयं लेखक उनके संबंध में लिखते हैं -- " दिनकरनाथ बहुत समझदार आदमी थे ; गृहिणी का वियोग दुःख उन्होंने भुला दिया और शिशु की देखभाल का पूर्ण यत्न किया । दुनिया के लोग कहकर हार गये , पर उन्होंने दूसरा विवाह न किया । दुनिया के लोगों ने इस लड़की को अभागी बताया । पर दिनकरनाथ के मन में यह बात न जमी । उन्होंने जान से बढ़कर उसे अधिक प्यार किया और यही प्यार रानी के नाम-करण का रहस्य है ।" 100

जनककुमार और रानी साथ में कालेज में पढ़ते हैं और मित्र हैं । शनैः शनैः ही यह मित्रता प्रेम में परिवर्तित हो जाती है । दयाधाम भी रानी का मित्र है , वह भी रानी को प्रेम करता है और जब उसे पता चलता है कि जनककुमार रानी को चाहता है और रानी भी उसे चाहती है तब वह ~~उसकी~~ उसकी हत्या तक की योजना बना लेता है , परंतु उसमें वह असफल रहता है । इस संदर्भ में जनक दयाधाम से कहता है -- " मैं इस पिस्तौल से और उसकी गोली से नहीं डरता । पर तुमने ऐसी भूल क्यों की कि समझ लिया कि मेरे अभाव में तुम जरूर रानी को अपना सकोगे ? कैसी भीषण तुम्हारी भूल थी ? इसका दण्ड तुम्हें प्रकृति देगी । " 101

यह ऊपर बताया गया है कि जनक और रानी परस्पर चाहते हैं एक-दूसरे को और अनेक विपत्तियों के बाद मिलते हैं । जनककुमार

और रानी का जब वियोग हो जाता है तब उसकी अंतरात्मा कहती है — " रानी ! तुम अब क्या करोगी ? तुम स्त्री हो और भारतवर्ष में तुम्हारा जन्म हुआ है । जो मन एक बार जिस पर आ चुका , क्या अब वह दुनिया-भर के लिए उतरा घड़ा नहीं बन चुका है ? क्या अब वह किसी भी दूसरी दिशा में जा सकता है ? क्या उस मन-मन्दिर में किसी भी दूसरी सूरत के लिए स्थान है ? "[102]

यद्यपि जनककुमारx जनककुमार परिस्थितिवश रानी को छोड़ जाता है , तथापि उसके मन-मन्दिरx मन्दिर में तो वही सच्चे प्रेम का दीपक ही जलता रहता है । एक समय ऐसा आता है कि उसे रोज़ के साथ एकांत में रहना पड़ता है , ऐसी दशा में भी वह अपने संयम को त्यागता नहीं है और उसके प्रेम की एकनिष्ठता रानी को ही सर्वस्व मानती रहती है । रानी के प्रति जनक को सच्चे दिल से प्रेम है , यहां तक कि जब रानी नागरदास के साथ भाग जाती है और उसके साथ रहने लगती है , तब भी उसे रानी पर संदेह नहीं होता और उसके एकनिष्ठ प्रेम में कहीं अन्तर नहीं आता । उपन्यास के अन्त में वह कहता है — " मेरे मन में एक मन्दिर था और उसमें कितने ही दिन से एक दीपक जल रहा था । इस मंदिर-दीप की पवित्रता कौन नष्ट कर सकता था रानी ? "[103]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि जनक और रानी आदर्श-प्रेम के प्रतीक हैं और उनके द्वारा लेखक ने प्रेम की एकनिष्ठता , प्रेम की महानता , उसके उच्च आदर्श , उसमें निहित त्याग और कल्याण की भावना , उसमें निहित संयम और तितिक्षा प्रभृति का बड़ा ही अच्छा दिग्दर्शनx दिग्दर्शन करवाया है ।

नागरदास जनककुमार का विलोमी चरित्र है । वह वासनात्मक एवं शरीरी प्रेम का प्रतीक है । व्यभिचार उसकी प्रवृत्ति है । शरीर की भूख को मिटाने के लिए वह कालेज की भोली-भाली लड़कियों को अपने मोहजाल में फंसाता है । उसकी अवस्था चालीस वर्ष की है , फिर भी कालेज की लड़कियों को खराब करने के लिए ही वह कालेज में पढ़ने का

नाटक रचता है । रानी को भी वह अपने जाल में फंसाता है । एक स्थान पर कमला नामक युवती को वह कहता है — " यह मेरी भूख है कमला , जिसे मिटाने के लिए न जाने कितनी चीजों को मैंने चखा और फेंक दिया , और न जाने कितनी अभागी हैं , जिन्हें मैं चखूंगा और मसलकर फेंक दूंगा , लेकिन मेरी यह भूख मिटेगी .... जानती हो कमला ? .... सिर्फ मरकर । " [104]

वस्तुतः नागरदास एक पथभ्रष्ट चरित्र है । उसे जीवन में सही राह नहीं मिली है । अन्यथा वह एक प्रतिभाशाली व्यक्ति है । अन्यत्र एक स्थान पर लेखक उसके विषय में कहते हैं -- "नागरदास एक मेधावी व्यक्ति था और दुनिया के बहुत से ऊंच-नीच उसने देखे थे । दुनिया के भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगों की मनोवृत्ति का बहुत गहरा ज्ञान भी उसे था और वह भयानके से भयानक स्थिति को कौशलपूर्वक बचा जाने की क्षमता रखता था । यह सचमुच दुर्भाग्य की बात थी कि उसके मस्तिष्क का प्रवाह दूसरी तरफ चला गया । उसकी वृत्तियां कहीं ठीक दिशा में प्रवाहित हो पातीं तो नागरदास क्या बनता -- यह कहना कठिन है । " [105]

प्रोफेसर भास्कर भी इस उपन्यास का एक विवादास्पद पात्र है । अपने विषय का विद्वान होते हुए भी उनके विषय में तरह-तरह की बातें सुनने में आती हैं । दयाधाम उनके चरित्र पर प्रकाश डालते हुए कहता है -- " जी, बात असल में यह है कि आदमी बेहद पढ़-लिख गया है और दुनिया को भी उसने बहुत देखा-समझा है । मगर ऐसा कहा जाता है कि जबसे उनकी पत्नी का देहान्त हुआ , उनके जीवन में कुछ अजीब तरह के परिवर्तन उपस्थित हो गए हैं । यों आजकल की सोसायटी में मद्यपान गुनाह नहीं समझा जाता , परंतु उन्होंने उसकी मात्रा कुछ जरूरत से ज्यादह बढ़ा दी है । और अनेक इसी तरह की बातें हैं , जिनके बारे में मैंने ज्यादह खोज-बीन नहीं की । " [106] परंतु जनक इसे सुनते ही बोल पड़ता है -- " मगर मैंने तो खोज-बीन की है । देखिए बाबूजी,

शास्त्रों के सप्त व्यसन में से कोई ऐसा नहीं , जिससे प्रोफेसर साहब बरी हों । मगर मेरी राय में यह हमारी बेचारगी है , अगर हम इन बातों की रोशनी में उनकी विद्वता को परखने की कोशिश करें । " 107 रानी की राय भी प्रोफेसर साहब के विषय में अच्छी है , यथा — " मेरी राय में प्रो0 भास्कर एक अद्भुत व्यक्ति हैं । हमारे कालेज में दूसरे किसी प्रोफेसर का उतना गहरा अध्ययन नहीं । न दुनिया के उतार-चढ़ाव उनके समान किसीने देखे हैं । " 108

आज के बदलते समाज में स्त्री-पुरुष संबंधों की स्वतंत्रता और स्वच्छंदता के बीच में कहीं विभाजक रेखा को खींचना होगा । ऋषभजी स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की स्वतंत्रता , उनके बीच की स्वस्थ मैत्री इत्यादि को तो स्वीकार करते हैं , परंतु उन्हें वह स्वच्छंदता पसंद नहीं जो व्यभिचार और स्वैराचार को जन्म दे । हमारे समाज में नागरदास जैसे कई धूर्त और विलासी लोग होते हैं जो स्त्री-पुरुष संबंधों की स्वतंत्रता का अनुचित लाभ उठाते हुए युवतियों की चंचल व कोमल भानवाओं को दूषित करते रहते हैं । लेखक ऐसे दुराचारी व्यक्तियों को नग्न करके , उनसे समाज को सावधान करना चाहता है । जब तक समाज में ऐसे नीच, चरित्रहीन , धूर्त तथा कामुक व्यक्ति रहेंगे , अनेक अबोध युवतियों का शील-भंग होता रहेगा और समाज में व्यभिचार को प्रश्रय मिलता रहेगा । इस संदर्भ में स्वयं लेखक का कथन है — " हमारे नव्य समाज में एक विचार आजकल जड़ पकड़ता जा रहा है । वह है , स्त्री-पुरुष के संबंधों की स्वतंत्रता । हमारे नवयुवकों का एक बहुत बड़ा दल जवान और कुंआरी लड़कि लड़कियों पर डोरे डालना , उन्हें फुसला कर चरित्र-भ्रष्ट करना , उन्हें तरह-तरह के प्रलोभन देकर घर-बार , प्रतिष्ठा और मर्यादा को तिलांजलि देने के लिए प्रोत्साहित करना बड़ी भारी बहादुरी समझता है । " 109

प्रस्तुत उपन्यास की समीक्षा करते हुए डा. मोहनलाल रत्नाकर ने उसकी कतिपय विशेषताओं व दोषों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है , यथा — " 'मन्दिर-दीप ' की कथावस्तु रोचक , कुतूहलमय

तथा सुगठित है । उसका मुख्य दोष कुत्सित तथा वर्जित प्रसंगों का रसात्मक वर्णन है । रोज़ का आरंभिक जीवन और नागरदास का सम्पूर्ण इतिहास ऐसे ही वर्णनों से भरा पड़ा है । इस उपन्यास के पात्र यथार्थ जीवन से लिए गए हैं , उनका चरित्र-चित्रण स्वाभाविक ढंग से हुआ है । नागरदास के चरित्र की सृष्टि लेखक की विधायक प्रतिभा का सुंदर उदाहरण है । इस उपन्यास की भाषा बड़ी प्रवाहमयी , पात्रानुकूल तथा भावों और विचारों को प्रकट करने में पूर्ण समर्थ हैं । .... यह उपन्यास यथार्थवादी शैली में निर्मित हुआ है । लेखक ने कुत्सित प्रसंगों के वर्णन में सांकेतिक शैली अपनाने की अपेक्षा स्पष्ट और उग्र-शैली का उपयोग किया है । " 110

तपोभूमि :
=========

यह उपन्यास एक प्रयोगधर्मी उपन्यास है । अपने शैली-शिल्प में यह अनूठा व अनोखा है । उपन्यास आत्मकथनात्मक है , पर यहां भी अलग-अलग पात्रों ने अपनी-अपनी कहानी कही है , अपने-अपने ढंग से । जहां "हिज हाइनेस " में सभी मुख्य पात्र अपनी कहानी पांच दौर में कहते हैं , यहां ~~श्र~~ प्रत्येक पात्र को केवल एक ही बार मौका दिया जाता है । इस प्रकार यह उपन्यास आत्मकथनात्मक और पात्रात्मक शैली लिए हुए हैं । एक दूसरी दृष्टि से भी इस उपन्यास का महत्व हिन्दी उपन्यास साहित्य के इतिहास में अपरिहार्य रहेगा , वह यह कि प्रस्तुत उपन्यास "सह-लेखन-परंपरा" का प्रथम उपन्यास है । इसे ऋषभजी तथा जैनेन्द्रजी ने मिलकर लिखा है । ऋषभजी कहते हैं यह " भैयया जैनेन्द्र " का उपन्यास है , और जैनेन्द्रजी इसे ऋषभजी का उपन्यास मानते हैं ।111

उपन्यास की संक्षिप्त भूमिका "अपनी बात" में ऋषभजी कहते हैं — " मेरा अपना इसमें कुछ नहीं है । जो कुछ है , भैयया जैनेन्द्र का । उनकी आज्ञा मानकर धरिणी की कहानी का कुछ भाग तथा सतीश की कहानी मैंने लिखी । सतीश की कमजोरियां मुझमें हैं । दयालु

पाठक यदि अपनी सहानुभूति मुझे दे सकेंगे तो धन्य मानूंगा । सन् '32 की जेल शैय्या जैनेन्द्र को इतनी सुविधा भी न दे सकी कि वे पुस्तक की भूमिका के दो-शब्द लिख सकते । इसीलिए उसका उपसंहार तथा अपनी बात भी लिखने पर मैं विवश हुआ । " 112 इस प्रकार नवीन की कहानी , धरिणी की कहानी का कुछ अंश तथा शशि की कहानी जैनेन्द्र द्वारा लिखित अंश हैं ; तो सतीश की कहानी तथा धरिणी की कहानी का कुछ अंश ऋषभजी द्वारा लिखे गए हैं । "सह-लेखन" की यह परंपरा हमें प्रेमचन्दोत्तर काल में भी मिलती है । अज्ञेय तथा अन्य ग्यारह लेखकों द्वारा लिखित "बारह खम्भा" , लक्ष्मीचन्द्र जैन के संपादकत्व में कई लेखकों द्वारा लिखित "ग्यारह सपनों का देश " तथा लेखक-दम्पति राजेन्द्र यादव तथा मन्नू भण्डारी द्वारा लिखित "दो इंच मुस्कान " सहलेखन परंपरा के अन्य उपन्यास हैं । 113

नवीन , धरिणी , शशि और सतीश इन चार खंभों पर "तपोभूमि" का कथानक-भवन खड़ा है । धरिणी का विवाह शशि के भाई से होता है , जिसकी युवावस्था में ही मृत्यु हो जाती है और धरिणी विधवा हो जाती है । धरिणी की इस असहाय अवस्था का लाभ उसका जेठ सुंदरलाल उठाता है और वह धरिणी को गर्भवती कर देता है । धरिणी आत्महत्या करती है , पर किसी तरह बच जाती है । नवीन और शशि का विवाह होनेवाला था और नवीन भी शशि को चाहता था , परंतु धरिणी वाली घटना के कारण वह उसे खोजने निकल पड़ता है और मिल जाने पर उसीके साथ रहने लगता है । विवश होकर शशि को सतीश से विवाह करना पड़ता है । वह भीतर से खुश नहीं है । उसे पुरुष जाति के अहं से नफ़रत हो जाती है । वह सतीश को मन से नहीं चाह सकती । फलतः उनका जीवन भी कलहपूर्ण रहने लगता है । धरिणी को शशि की इस अवस्था का पता चलता है । वह नवीन को शशि की ही धरोहर समझती है और बार-बार उसे शशि के पास जाने के लिए कहती रहती है । अन्ततः नवीन शशि के पास जाता है , दोनों को एकान्त में बातें करते हुए सतीश

देख लेता है , जिसे उसका पुरुष अहं बरदाश्त नहीं कर पाता और वह नवीन की हत्या कर देता है । अतः डा. मोहनलाल रत्नाकर के इस मत से सहमत हुआ जा सकता है कि "'तपोभूमि' कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से प्रेमचन्द के सामाजिक उपन्यासों से भिन्न है । उसका झुकाव व्यक्तिवादी तथा मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की ओर अधिक है । इसकी आत्मकथात्मक शैली , इसका दार्शनिक विवेचन , स्त्री-पुरुष की मानसिक दशाओं का उद्घाटन और पुरुष की अहंमन्यता के दुष्परिणाम इसे जैनेन्द्र के व्यक्ति-वादी उपन्यासों के अधिक निकट पहुंचा देते हैं ।" [114]

प्रस्तुत उपन्यास में मुख्यतया निम्न पांच प्रकार की सामाजिक समस्याओं को लिया गया है -- 1. हिन्दू विधवा की दयनीय स्थिति, 2. पुरुष की व्यभिचारी वृत्ति , 3. पुरुष द्वारा नारी का तिरस्कार, 4. पुरुष की अहंमन्यता तथा 5. नर-नारी का कलह । "धारिणी की कहानी के द्वारा हिन्दू विधवा की दयनीय एवं विवश अवस्था का चित्रण हुआ है । संयुक्त-परिवारों में विधवा बहू के साथ उनके ससुर या जेठ का सलूक कईबार अत्यंत ही लज्जास्पद होता है । धारिणी के जेठजी सुंदरलाल ऊपर से तो बड़े धार्मिक व्यक्ति होने का दंभ भरते हैं , परंतु मौका पाकर वे धारिणी से शारीरिक संबंध स्थापित कर देते हैं । वह गर्भवती हो जाती है , सुंदरलाल गर्भपात करवाना चाहता है , परंतु धारिणी दृढ़तापूर्वक उसका विरोध करती है । यदि वह गर्भपात करवा लेती तो सुंदरलाल के लिए ठीक रहता , क्योंकि अपनी हवस को पूरा करने के लिए उसे एक खिलौना हमेशा के लिए सुलभ हो जाता । अतः प्रथम बार ज्ञात होने पर तो वह प्रसन्न होता है -- " लक्षण बहुत दिनों तक सुंदरलाल से भी छिपे न रहे । वह खुश हुए । भाग्य को उन्होंने धन्य-वाद दिया । इतनी असफलता के बाद उन्हें एक साधन हाथ आया । जिसमें वे निश्चित सफलता देखते थे । हा विधि ! वह इससे घबराये नहीं -- उल्टे प्रसन्न हुए । वह कितने ढीट 'पापवादी' थे ।" [115]

धारिणी जब गर्भपात के लिए तैयार नहीं होती , तब पहले तो

सुंदरलाल लोकलाज के भय से डरते हैं , परंतु धारिणी के इस निर्धार को सुनकर निश्चिंत हो जाते हैं कि वह किसीके नामका घटस्फोट करनेवाली नहीं है -- " नहीं , मैं उसका नाम नहीं बताऊंगी । मैंने प्रतिज्ञा की है उसका नाम जबान पर न लाऊंगी । मैं उससे नफरत करती हूं । दिल कहता है , उसे बिलखते देखकर भी मैं पसीजूंगी नहीं । पर मैं यह नहीं मानती । मैं परमात्मा से चाहती हूं -- वह उसका कल्याण करे । " [116] ऐसा प्रतीत होता है कि त्यागपत्र की मृणाल बोल रही है ।

धारिणी की खोज में जब नवीन चला जाता है तब सतीश उस मौके का फायदा उठाते हुए शशि से विवाह कर लेता है । शशि नवीन को चाहती थी , नवीन भी शशि को चाहता था , परंतु वह अपनी आदर्श-वादिता की झोंक में चला जाता है । उसका अहं तो संतुष्ट हो जाता है , पर शशि का क्या ? लक्ष्मण तो अपने भ्रातृप्रेम में चले जाते हैं , पर भुगतना तो उर्मिला को ही पड़ता है न ? ऐसे में सतीश यदि प्रेम से शशि को जीतना चाहता तो जीत सकता था , पर वह तो अपने अधि-कार को आगे धरता है । स्त्री का मान और पुरुष की अहंमन्यता के द्वन्द्व का परिणाम ही उनके जीवन में व्याप्त कलह है । यहां लेखक ने मामी और नवलराय जैसे चरित्रों के माध्यम से स्त्री-पुरुष संबंधों पर काफी गहराई से विचार किया है । उपन्यास में गुम्फित यह चिंतन ही उसे एक विशिष्ट गरिमा प्रदान करता है ।

मामी सतीश को समझाते हुए कहती है -- " औरत का दिल बेहद कोमल होता है , पर ॠ साथ ही बेहद गहरा और सहनशील भी । सब तरह का अत्याचार और सब तरह की वेदना जो औरत दिल की तह में छिपाये रह सकती है , मर्द बच्चे की मजाल नहीं कि उसे समझ सके । .... औरत सब सहती है , पर दिल उसका बब जलता रहता है । यह जलन मर्द पर गाज बनकर गिरती है , और इसीलिए कलह का सूत्रपात होता है । याद रखना , इस कलह में औरत नहीं , मर्द ही जलता है । औरत की भीतरी आग इतनी तेज होती है , कि इस बाहरी आग का उस पर असर ही नहीं होता । सच्ची बात यह है

कि बाहर-भीतर का तापमान समान रखने के लिए औरत को कलह करना पड़ता है । यही कारण है, औरत के कलह प्रिया कहाने का । ... उसे ﴾पुरुष को﴿ कोशिश करके अपने को औरत के अनुकूल बनाना चाहिए, उसके मनोभावों का आदर करना चाहिए, उसकी प्रकृति का अध्ययन करना चाहिए । .... तुम अगर तकलीफ करो, औरत का दिल समझने की, तो अपने को औरत के तलवे की चीज़ पाओ । तुम अगर काम लो उदारता से -- तो औरत के त्याग और बलिदान पर झूम उठो ; उसके फूल से दिल की कुशलता के लिए अपने को तुच्छ समझ बैठो । न भाई, मर्द को इतनी फुर्सत नहीं है । क्योंकि यह मर्द का जमाना है । मर्द का मस्तिष्क उर्वर है, मर्द तर्क कर सकता है, मर्द को सब साधन सुलभ है । मर्द -- मर्द है, औरत -- औरत । " [117]

इस तरह के विचारों के लिए लेखक के दूसरे प्रवक्ता हैं मि. नवलराय । एक स्थान पर वे सतीश को कहते हैं -- " पुरुष अगर स्त्री की इच्छाओं को समझ ले, और अपनी इच्छाओं को उसकी इच्छाओं में रमा दे, तो मैं समझता हूं, आत्मिक सुख मिल सकता है ; क्योंकि यही स्वाभाविक है । इस प्रकार एक-दूसरे में रम जाने की कोशिश करने पर मन आप ही ऐसे स्थायी समझौते पर पहुंच जाते हैं, जहां न क्लेश है, न कलह है ; न भ्रम है, न आशंका है । " [118] स्त्री के चरित्र-दोष की बात जब सतीश चलाता है, तब नवलराय कहते हैं -- " तुम इतने उदार क्यों नहीं बन सकते ? स्त्री के दिल पर अधिकार करो कि वह इधर-उधर चले जाने की कल्पना भी न करे ... यह पहली बात है । इसमें अगर तुम अक्षम रहे, तो मेरी राय है ... दोनों दिलों को अपनी-अपनी राह चलने दो । जरूरत यह है, कि तुम दिल के किसी खास तरफ चले जाने को ही सबकुछ न समझ बैठो । पुरुष अगर इतना विचारशील हो जाय, तो तपोभूमि का सारा उपद्रव लुप्त हो जाय । " [119] यहां इस सांसारिक जीवन को, दाम्पत्य-जीवन को ही तपोभूमि कहा गया है, यह बात भी स्पष्ट हो गई है । "तपोभूमि" उपन्यास के सन्दर्भ में डा. मोहनलाल रत्नाकर के निम्न विचार उल्लेखनीय समझे

जायेंगे — " "तपोभूमि " के पात्र मुख्यतः व्यक्तिगत हैं । वे ऋषभचरण जैन के पात्रों की अपेक्षा जैनेन्द्रकुमार के पात्रों से अधिक साम्य रखते हैं । वे मननशील और दार्शनिक वृत्ति लिए हुए हैं , समाज की दृष्टि से भ्र वे भ्रष्ट होकर भी , वे आदर्श रूप हैं । उनका चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक ढंग से हुआ है । इन पात्रों में धारिणी का चरित्र सबसे अधिक मनोवैज्ञानिक तथा मर्मस्पर्शी बन पड़ा है । वह "पर " पर "स्व " का बलिदान करती है । नवीन के चारित्रिक विकास में परहित की भावना को अधिक प्रश्रय दिया गया है । सतीश में पुरुष की अहंमन्यता और सुंदरलाल में पुरुष की व्यभिचारी वृत्ति अपने नग्न रूप में दृष्टिगत होती है । इस उपन्यास की भाषाशैली विषयानुरूप है और उसमें कथ्य को अभिव्यक्त करने की पूर्ण सामर्थ्य विद्यमान है । " 120

भाग्य :
=======

हमारे यहाँ कुछ सवाल , कुछ समस्याएं ऐसी होती हैं , जिनकी चर्चा निरंतर होती रही है और आगे भी होती रहेगी । साहित्य में वस्तु का महत्व है या शिल्प का , कला जीवन के लिए है या कला के लिए , ईश्वर है या नहीं , ये और ऐसी अनेक बातें हैं , जिन पर निरंतर विचार-विमर्श होता रहा है । "भाग्य " भी ऐसा ही एक विषय है । "भाग्य" और "पुरुषार्थ" के पक्ष-विपक्ष में आदि-अनादि काल से चर्चा होती आई है और हर युग में उसके पक्षधर पाए जाते हैं । वस्तुतः जहां घनघोर भाग्यवाद मनुष्य को आलसी और प्रमादी बना देता है , वहां घनघोर रूप से उसका नकार कई बार मनुष्य को तोड़ भी देता है , अथक परिश्रम के बाद जब कई बार उसका फल नहीं मिलता तो मनुष्य बुरी तरह से टूट जाता है । ऐसी स्थिति में भाग्यवादी मनुष्य को एक मानसिक संतुष्टि मिलती है ।

भाग्य के पक्ष में भर्तृहरि का यह श्लोक प्रसिद्ध है —

पत्रं नैव यदा करीर विटपे दोषोवसन्तस्य किम्
नोलूको प्यव लोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणं

वर्षानिव पतन्ति चातक मुखे मेघस्य किं दूषणं

यत्पूर्वं विधिना ललाट लिखितं तन्मार्जितु कः क्षयः ।। "[121]

अर्थात् करील के वृक्ष में यदि पत्ते नहीं है तो वसंत का क्या दोष ? उल्लू यदि दिन में नहीं देख पाता तो सूर्य का क्या दोष ? वर्षा का जल यदि चातक के मुख में नहीं पड़ता तो मेघ का क्या दोष ? विधाता ने जो पहले ही भाग्य में लिख दिया है , उसे कौन मिटा सकता है ?

इस सन्दर्भ में एक अन्य संस्कृत सूक्ति मिलती है -- " भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम् । समुद्रमंथनाल्लभे हरिर्लक्ष्मी हरो विषम् "[122] इसी संस्कृत उक्ति पर से हिन्दी के नीति-सूक्तिकार कवि गिरिधर कविराय ने लिखा है -- "भाग्य सर्वत्र फलत है , न च विद्या पौरुष सरल । हरि-हर मिल सागर मथ्यो , हर को मिल्यौ गरल ।।" [123]

परंतु दूसरी तरफ "पुरुषार्थ" के सन्दर्भ में भी कई उक्तियां मिलती हैं , जैसे --

"ब्रह्मा से कुछ लिखा भाग्य में मनुज नहीं लाया है ।

अपना सुख उसने अपने भुजबल से ही पाया है ।। " [124]

इसके अतिरिक्त ऐसे अनेक कथन मिलते हैं । "हम अपना भाग्य खुद ही बनाते हैं । " [125] "विक्लवोवीर्यहीनो यः स दैवमनुवर्तते । " अर्थात् जो कायर है , जिसमें पराक्रम का नाम नहीं है , वही दैव का भरोसा करता है ।[126] आदि-आदि । मेरे निर्देशक डा. पारूकांत देसाई का भी एक दोहा इस संदर्भ में है -- " लिक्खन लीकन जो चले , भाग्य भरोसा खास । कबिरा ऐसे लोग से ना बदले इतिहास ।।" [127]

अस्तु , यह उपन्यास भी "भाग्य" की उसी चर्चा को लेकर लिखा गया है । उसका रचनाकाल सन् 1931 है । ऐसा प्रतीत होता है कि उपन्यास में लेखक ने "भाग्य" का पक्ष लिया है । इस सामाजिक उपन्यास में लेखक का उपक्रम यह सिद्ध करना रहा है कि मनुष्य की सफलता-असफलता के पीछे प्रारब्ध का योगदान अवश्य रहता है । भाग्य अनुकूल हो तो बड़ी से बड़ी समस्या भी चुटकियों में हल हो जाती है ,

और भाग्य प्रतिकूल हो सरल से सरल कार्य भी जटिलतम हो जाता है । इस उपन्यास में मुख्यतः चार पात्र हैं -- राजकुमारी , नकूल , करुणा तथा रामशरण । राजकुमारी और नकुल भाग्यवादी हैं और रामशरण तथा करुणा कर्मवादी । लेखक की सहानुभूति और झुकाव भी प्रारब्धवादियों के प्रति अधिक है । वे उनके पक्ष में अनेक तर्क जुटाते हैं । उपन्यास में एक स्थान पर कहा गया है -- " पुरुषार्थ आशाओं और कल्पनाओं के ऊँचे-ऊँचे किले बनाता है , और भाग्य क्षण भर में उन्हें चूर-चूर कर देता है । .... मनुष्य भाग्य से लड़कर कदापि नहीं जीत सकता । वह भाग्य के हाथ की कठपुतली बनकर रहता है । और मेरा तो विश्वास है कि इन समस्याओं पर तर्क करना ही व्यर्थ है , क्योंकि उससे सुलझने की जगह अधिकांश समस्याएं उलझती ही जाती हैं । " 128

उपन्यास के अन्त में लेखक ने भाग्यवादियों की जीत को ही उद्घोषित किया है । कुमारी की माता को उसके विवाह की बहुत चिंता है । वह गरीब है और उसके पास दहेज के पैसे नहीं है । परंतु कुमारी को अपने भाग्य पर अटल विश्वास है और अतः बिना दहेज के भी उसका विवाह नकुल जैसे एक सुयोग्य व्यक्ति के साथ हो जाता है और वह अपनी सेवा , त्याग तथा निष्काम कर्म के सहारे सौभाग्यवती हो जाती है , इतना ही नहीं उनका दाम्पत्य-जीवन भी सुखरूप बीतता है । दूसरी तरफ बहुत चाहने पर भी और बहुत हाथ-पैर मारने पर भी करुणा के पिता उसका विवाह नकुल से नहीं करा सकते । पुरुषार्थ में विश्वास रखनेवाली करुणा का विवाह रामशरण से होता है जो अत्यंत अयोग्य , षड्यन्त्रकारी तथा मिथ्या आचरणवाला है और इस प्रकार करुणा का जीवन करुणता से पूर्ण हो जाता है । यहां एक बात की ओर ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है कि राजकुमारी का सुखरूप दाम्पत्य-जीवन भी अन्ततः तो उसके त्याग , सेवाभाव और निष्काम कर्म पर आधारित बताए हैं ।

प्रस्तुत उपन्यास को देखकर प्रेमचन्दपूर्वकाल के मेहता लज्जाराम शर्मा के उपन्यास "ꣻꣻ " स्वतंत्र रमा परतंत्र लक्ष्मी " की स्मृति कौंध जाती है । उस उपन्यास का लेखक भी मानो प्रतिबद्ध होकर यह सिद्ध

करने पर खुल जाता है कि लड़की का शिक्षित होना उसके दाम्पत्य-जीवन की सुखाकारी के लिए खतरा है । फलतः शिक्षित रमा की जिन्दगी तबाह हो जाती है और अशिक्षित लक्ष्मी परिवार में सबके साथ ताल-मेल बिठाते हुए सुखरूप जीवन बिताती है । यहां लेखक का अभिगम भी कुछ इसी प्रकार का दिखता है । वह मानो भाग्यवादियों को सफल बनाने पर तुला हुआ है । किसी भी उपन्यास की श्रेष्ठता का मूल आधार न केवल विषय-वस्तु, चरित्र-चित्रण आदि है, प्रत्युत उसमें अभिव्यक्त दर्शन और उस दर्शन की श्रेष्ठता पर भी विचार किया जाता है । यहां कृति में दर्शन या चिंतन तो है, परंतु उसकी श्रेष्ठता में हमें संदेह है । भाग्यवाद की वकालत करके आखिर लेxxx लेखक समाज को लेxxxxxxxxxxxxxx कहां ले जाना चाहता है ? भारतीय समाज में यों ही काहिली और प्रमाद कम है कि लेखक उसमें वृद्धि करना चाहता है ? लेखक के इस चिंतन को हम प्रगति-कामी और स्वस्थ नहीं कह सकते और इस निकष पर यह उपन्यास प्रेमचन्दपूर्वकाल के सामान्य उपन्यासों की कोटि में जा बैठता है ।

यह उपन्यास एक फार्मूलाबद्ध रचना है । अतः उसका एक बना-बनाया ढांचा है । वस्तु और चरित्र दोनों नियोजित । अतः पात्रों में सप्राणता और सजीवता का अभाव-सा प्रतीत होता है । वे लेखक के हाथ की कठपुतली हो गये हैं । लेखक उसे जिधर चाहे खदेड़ता रहता है । हालांकि उपन्यास के पात्र यथार्थ जीवन से लिए गए हैं, लेखक ने उनका चरित्र-चित्रण प्रायः प्रत्यक्ष-शैली में किया है । पात्रों के मानसिक द्वन्द्व और आंतरिक भावों का चित्रण न करके लेखक ने परिचयात्मक ढंग से उनका चित्रण किया है । यथा — " दयावती उसकी मां का नाम है । बड़े घर की बेटी थी, और बड़े घर में ब्याही आई, इसलिए दया-वती को अपने अतीत वैभव की याद भूलती न थी । गरीबी आए मुद्दत गुजर चुकी थी और बीस रूपये के दर्जनों नौकर रखने वाली दयावती वर्षों से एक नौकर के वेतन में गुजारा चला रही थी, पर क्या मजाल कि उसके आत्मसम्मान में, उसकी दृढ़ता और उसके बड़प्पन में बाल बराबर फर्क पड़ा हो । " [129]

ऐसी परिचयात्मक और प्रत्यक्ष शैली के कारण उपन्यास में ढांचागत स्थूलता आ गई है । पात्रों में निजता या स्वतंत्र व्यक्तित्व का अभाव-सा दिखता है । फलतः इस उपन्यास के पात्र यथार्थ जीवन से संबंधित होने के बावजूद निर्जीव तथा अस्वाभाविक से लगते हैं । पात्रों के स्वयं के कार्य-व्यापार या कथोपकथन के जरिये यदि उनका चरित्रोद्घाटन होता तो औपन्यासिक कला में वृद्धि होती । लेखक सूत्रधार की भांति पाठकों और पात्रों का पथ-प्रदर्शक बन गया है । वह पाठकों को मानो अबोध समझता है, कदाचित् इसीलिए उसे कहना पड़ता है — " बस, अब यह परिच्छेद समाप्त होता है । भोजन करते समय का वार्तालाप और कल्या के मानसिक भावों का उठाव-गिराव आपको बताकर आपकी नजर में उसका चरित्र गिराने को जी नहीं चाहता । कमजोरियों से खाली तो बिरले ही होते हैं — हम उन कमजोरियों का अनावश्यक प्रदर्शन कर किसीको नंगा क्यों बनावें, कमजोरियों के पर्दे में गुणों को ढांककर अनुदारता क्यों दिखावें और अपने औपन्यासिकता के अधिकार का दुरुपयोग क्यों करें ? " [130]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने कन्याओं के विवाह की समस्या, दहेज समस्या आदि सामाजिक समस्याओं का आकलन किया है । यदि विवाह स्त्री-पुरुष उभय की एक सामाजिक उपयोगिता है, जरूरत है, तो फिर उसमें दोनों की गरज होनी चाहिए । परंतु हमारे तथाकथित उच्चवर्गीय (जाति की दृष्टि से) भारतीय समाज में मानो यह गरज केवल कन्यावालों की ही है । लड़के वालों के सामने उन्हें हर हालत में झुकना पड़ता है । पिछड़ी जातियों में ऐसा नहीं है, यह एक अच्छा लक्षण है, पर वहां भी अब इनकी देखादेखी इसका प्रवेश न होगा, कहा नहीं जा सकता । उपन्यास का कमजोर पक्ष यह है कि समाज की उक्त समस्याओं की सदोषता एवं भीषणता चित्रित करने के स्थान पर लेखक ने उनका भाग्यवादी समाधान प्रस्तुत किया है ।

• इस उपन्यास की सबसे बड़ी सीमा यही है कि लेखक पात्रों के

चरित्र को स्वाभाविक रूप से विकसित नहीं होने देता है । वह पाठकों को सोचने - समझने का अवसर देने के पक्ष में भी नहीं है । अपने भावों और विचारों को प्रवाहमयी भाषा में अभिव्यक्त करना ही जैसे उसका लक्ष्य हो । वह उपन्यासकार से प्रचारक बन गया है , भाग्यवाद का प्रचार करना ही उसका ध्येय प्रतीत होता है । कला की निष्पक्षता से मानो उसका कोई नाता ही नहीं है । " 131

हालांकि उक्त दोष प्रेमचन्दयुग के प्रायः लेखकों में मिलता है , यहां तक कि प्रेमचन्द भी उससे मुक्त नहीं है । डा. पारूकांत देसाई ने इस सन्दर्भ में लिखा है — " प्रेमचन्द की औपन्यासिक कला की सबसे कमजोर कड़ी उनकी उपदेशक वृत्ति है । पर इस पर वे क्रमशः नियंत्रण पाते गए हैं । स्वयं प्रेमचन्दजी अपनी इस कमी से परिचित थे । 3 सितम्बर सन् 1929 में सब्बरवालजी को लिखे एक पत्र में इसकी कुछ झलक मिलती है — " इधर 'माधुरी ' और ' विशाल भारत ' में मेरी जो कहानियां छपी हैं उनमें से कोई आपको अच्छी लगी ? हो सकता है कि उनकी उपदेशात्मकता आपको अच्छी न लगे । लेकिन जब तक हिन्दुस्तान विदेशी जूए के नीचे पड़ा कराह रहा है वह कला के उच्चतम शिखरों पर नहीं पहुंच सकता । यहीं पर एक गुलाम देश और एक आजाद देश के साहित्य में अंतर आ जाता है । हमारी सामाजिक और राजनीतिक स्थितियां हमको विवश करती हैं कि हम जब भी मौका पाएं कुछ शिक्षा दें ।" " 132

परंतु यहां ध्यान रहे कि प्रेमचन्द जिन बातों का उपदेश देना चाहते थे उनका संबंध भारतीय जनता की अशिक्षा , अंध-विश्वास और जड़ रूढ़ियों से था । कर्मण्यता के लिए था , न कि अकर्मण्य और भाग्यवादी बनाने के लिए । यहां एक बात और स्पष्ट कर दें । ईश्वर में श्रद्धा और भाग्यवाद ये दोनों अलग-अलग है । ईश्वर में श्रद्धा रखनेवाला व्यक्ति कर्म या कर्तव्य से विरत होने की बात नहीं करता है । वस्तुतः वह निष्काम कर्म की बात करता है और भाग्यवादी भी इतना तो मानते ही हैं कि अन्ततः भाग्य भी 'पिछले संचित कर्मों' का ही परिणाम है । अतः एक प्रवृत्तिशील लेखक होने के बावजूद भाग्य की यह वकालत थोड़ी अखरने वाली जरूर लगती है ।

रहस्यमयी :

ऋषभचरण जैन ने मुख्यरूप से सामाजिक विकृत्तियों , विसंगतियों एवं विद्रूपताओं का चित्रण किया है । इनके कुछेक उपन्यासों पर प्रेमचन्द का प्रभाव लक्षित होता है , परंतु अधिकांश उपन्यासों में ये उग्रजी के घोर यथार्थवादी दृष्टिकोण से प्रभावित लगते हैं । डा. गोपालराय के अनुसार ये प्रेमचन्द युग के उन उपन्यासकारों में हैं , जिन्होंने अपने उपन्यासों में उग्र की तरह समाज के नग्न यथार्थ का वर्णन करने का साहस दिखाया था । समाज में फैले व्यभिचार और कुरीतियों का जिस साहस के साथ इन्होंने उद्घाटन किया , वह अभूतपूर्व था । यही उनकी प्रसिद्धि का कारण भी था और उपन्यासकार के रूप में उनकी मृत्यु का भी । समाज के अनुद्घाटित व्यभिचार कृत्यों को प्रकाश में लाने के जोश में , ये भूल गये कि सामयिकता के चित्रण से कोई उपन्यासकार तत्कालीन पाठकों के बीच चाहे जितना लोकप्रिय हो जाए , उसका व्यक्तित्व स्थायी नहीं हो सकता । [133]

"दिल्ली का व्यभिचार" , "दिल्ली का कलंक " , "दुराचार के अड्डे " तथा प्रस्तुत उपन्यास "रहस्यमयी" उग्रजी के अतियथार्थवाद या नग्न या घोर यथार्थवाद से प्रभावित हैं । यहां एक तथ्य ध्यातव्य रहे कि यदि ऐसे में लेखक का लक्ष्य यथार्थ स्थिति से पाठकों को अवगत कराना हो और उसी उपक्रम में यदि वह वेश्यालयों, मदिरालयों या व्यभिचार के अन्य ठिकानों का वर्णन करता है तो उसे उचित समझा जा सकता है । परंतु यदि लेखक स्वयं ऐसे रोचक और लिजलिजे दृश्यों का अंकन रसलिप्त होकर करे तो वह कला से अपदस्थ होता हुआ सस्ते-बाजारू मनोरंजन की ओर सरक जाता है जहां उसका एक लक्ष्य धनोपार्जन भी हो सकता है । यहां उनका लक्ष्य समाज-सुधार ही नहीं रह जाता , प्रत्युत वे अपनी औपन्यासिक कृतियों के माध्यम से अधिकाधिक धन भी अर्जित करना चाहते हैं । अतः सस्ते मनोरंजन की सामग्री जुटाने के कारण उनके उपन्यासों का स्तर गिरता जाता है और उसकी साहित्यिक गरिमा को क्षति पहुंचती है । इस तथ्य की पुष्टि स्वयं लेखक के इन शब्दों से हो

जाती है -- " सिर्फ सदाचार संबंधी अनर्गल पुस्तकें छापकर कोई प्रकाशक आर्थिक सफलता नहीं प्राप्त कर सकता और व्यापारिक कार्य के लिए चंदा मांगकर गुजर करना भी किसी प्रकाशक की गैरत गवारा नहीं कर सकती । "[134]

"रहस्यमयी" आत्मकथनात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है । बकौल लेखक के उपन्यास में वर्णित सारी घटनाएं हर्फ़-बहर्फ़ सच्ची हैं , केवल पात्र और स्थान के नाम बदल दिए गए हैं । "आरंभिक " में स्वयं लेखक ने कहा है -- " मेरे पाठक सबसे पहले यह नोट कर लें , कि जो बात मैं कहूंगा , वह कोई कपोल-कल्पित कहानी , या कोरी मन-गढ़न्त नहीं है , बल्कि मेरे जीवन में बीती हुई एक सच्ची , सम्भव और अद्भुत घटना है । .... मेरी कहानी में जिन लोगों ने काम किया है, उनमें से इस समय कोई मर गया है , कोई खप गया है , कोई ग़ायब हो गया है , और कोई पता नहीं , कहां , कैसे , क्या करता है । परन्तु बात कुछ ऐसे मनुष्यों से संबंध रखती है , जो जीते-जी शिक्षित-समाज में आदर और "वज़न " रखते थे और जिनको याद रखने वाले आज भी बहुत से हैं । इसलिए मुझे उन सब पात्रों और स्थानों के नाम फ़र्ज़ी रखने पड़ेंगे । मतलब यह कि मैं जो अपना नाम रमेशचन्द्र त्रिपाठी बता रहा हूं -- यह नकली है , और इन सब घटनाओं की रंगभूमि जो दिल्ली बता रहा हूं -- यह भी । "[135]

वैसे उपन्यास की कथा रमेशचन्द्र त्रिपाठी द्वारा कही गई है , परंतु उसमें मुख्य कथा तो सुखवतीदेवी और सुंदरलाल की है । रमेश-चन्द्र तो शुरू से आखिर तक एक दर्शक की हैसियत में ही रहता है । उप-न्यास में सुखवतीदेवी और सुंदरलाल जैसे पात्रों के माध्यम से हमारे सुसभ्य और संस्कारी समाज में भीतरी तौर पर जो व्यभिचार-लीला चलती है उसको लेखक ने बड़ी निर्ममता से बेपर्द किया है । समाज में बुरे लोग होते हैं , शैतान होते हैं , जुल्मी और आततायी भी होते हैं , परंतु वे उतने अखरते नहीं जब प्रकट रूप में होते हैं । वस्तुतः जब बुराई अच्छाई का

मुखौटा धारण करके आती है , अधर्म धर्म के आवरण में आता है , अन्याय न्यायमूर्ति का रूप धारण करने लगता है , कुत्सितता संस्कारिताबनकर घूमती है , वेश्या सती-साध्वी के भेश में आती है , स्थिति तब भयावह होने लगती है , क्योंकि ये सब छद्म-रूप हैं और छद्मरूप बड़े छलावा होते हैं । उपन्यास की सुखवतीदेवी ऐसा ही एक छद्म-पात्र है । उपन्यास का एक पात्र प्रेमशंकर बिलकुल सही कहता है — " मैं ऐसे आदमियों को आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूं , जो भीतर बाहर सुंदर हैं , सच्चरित्र हैं और सरल हैं ; ऐसे आदमियों को मैं माफ़ कर सकता हूं , जो दोनों तरफ से बुरे हों , अर्थात् खुल्लमखुल्ला दुराचार करते हों । मगर जो आदमी समाज-सुधार का बुर्का ओढ़ कर , सच्चरित्रता और पवित्रता की दाल गला कर , समता-भाव और सौजन्य का ढोंग रच कर , दुराचार का खेल खेलते हैं ; जो स्टेज पर लंबी -चौड़ी वक्तृता झाड़ते हैं , और चुपचाप घृणित से घृणित पाप करने से भी नहीं हिच-कते , बस , ऐसे आदमियों का मैं जानी दुश्मन हूं । "

प्रस्तुत उपन्यास के सुखवतीदेव और सुंदरलाल दोनों शैतान के अवतार हैं , परंतु ऊपरी तौर पर उन्होंने समाज-सुधार और धार्मिकता का ऐसा लबादा ओढ़ रखा है कि कोई उनके असली चरित्र को जान ही नहीं सकता । समाज में उनकी सेवा और धार्मिकता के , उदारता और दया के डंके बजते हैं । यहां तक कि उनके साथ रात-दिन काम करने वाले कार्यकर तथा उनकी रात-दिन सेवा करने वाले नौकर तक उनके भीतरी असली रूप से परिचित नहीं है । श्रीमती सुखवती देवी समाज में एक "देवी " के रूप में प्रतिष्ठित हैं । वह "लाइट-प्रेस" की संचालिका और "महिला" नामक पत्रिका की संपादिका है । सुंदरलाल उनका सहायक है , उनके सुख-दुःख का सच्चा साथी । एक काला-कलूटा हब्शीनुमा आदमी जो सुखवतीदेवी के साथ साये की तरह रहता है । परंतु मूलतः ये दोनों इतने गर्हित और पतित हैं कि उन्हें हम मानव-जाति के नाम कलंक मान सकते हैं । सुखवती विवाहिता थी , पर अपने पति को मारकर एक आदमी के साथ दश हजार के आभूषण लेकर भाग

आयी थी । उसके बाद वह नगर के कई जाने-माने और प्रतिष्ठित धनिक व्यक्तियों से निकटता बढ़ाकर उन्हें अपने मोहपाश में फांसते हुए उनसे मनचाही रकम ऐंठती रहती है । एक तरफ सत्ता और संपत्ति के लिए, समाज में अपने स्थान और रुतबे के लिए, वह धन-सत्ता-संपन्न लोगों से शारीरिक संबंध जोड़ती है, तो दूसरी तरफ अपनी काम-वासना की तृप्ति के लिए नित्य नये-नये बछड़ों को फांसती रहती है । नागार्जुन के उपन्यास "इमरतिया" की गौरी की भांति इसे भी अपनी रातों को महकाने के लिए कई-कई मर्द चाहिए, सुंदर और गभरू नवयुवक । विद्याधर, देवीशरण आदि ऐसे ही लोग हैं । समाज में, प्रकट रूप से वह नवयुवकों को देशसेवा व समाजसेवा के लिए अविवाहित रहने का उपदेश देती है :, ताकि बाद में वह उनका उपभोग कर सके । उनके पास कई संस्थाएं हैं । शैलेश मटियानी के उपन्यास "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई" की सेठानी नर्मदा की भांति सुखवतीदेवी भी उन संस्थाओं के महत्त्वपूर्ण पदों पर सुंदरलाल जैसे विश्वसनीय व्यक्तियों को रखती है जो या तो स्वयं उसकी हवस तृप्त करने में सक्षम हों या फिर उसकी उस वासना-तृप्ति-यज्ञ में समिधा जुटाने में कुशल हों ।[137]

ऐसी विपुलवासनावती स्त्रियों को "निम्फो" कहते हैं । किसी एक पुरुष से उनकी प्यास नहीं बुझती ।[138] उपन्यास के एक पात्र प्रेमशंकर को भी वह अपने चक्कर में फांसना चाहती है, परंतु वह अपनी पत्नी को जी-जान से चाहता था, अतः सुखदेवी के प्रेमपाश में नहीं फंसता । सुंदरलाल के अतिरिक्त यही एक व्यक्ति है जिसे "देवीजी" के रहस्यों का पता है और इस सबब ही वह उस संस्था में टिका हुआ है । वह कदाचित् प्रेमशंकर को मौत के घाट भी उतार देती, परंतु वह ऐसा कोई कुचक्र रचे, उसके पूर्व ही सुखवतीदेवी की हत्या हो जाती है । प्रेमशंकर को देवीजी के घृणित जीवन के सारे राज़ मालूम हैं, अतः एक स्थान पर वह कहता है -- " देखिए, यह शैतान की नानी एक शख्स तो क्या, शायद एक दर्जन पति रखकर भी संतुष्ट नहीं हो सकती । नित्य नये फूलों को तोड़ना, सूंघना और पैरों

तले कुचल डालना, यही इस भयानक रमणी का काम है। अब सुंदरलाल से जो इसने 'सहयोग' किया है, तो उसकी पत्नी बनने के लिए या उसे अपना पति बनाने के लिए थोड़ा ही, बल्कि उसकी तह में कई भेद हैं। सबसे पहला तो यह कि सुंदरलाल बड़ा वाक्पटु पुरुष है। .... बस, ऐसा आदमी इसके बड़े काम का था, जो रोज़ अच्छे-से-अच्छे, सुंदर-से-सुंदर फूल इसके लिए लावे। दूसरा गुण इसमें यह है कि देवीजी का वह अंधभक्त है और उसके लिए जान देने तक को तैयार हो सकता है, और जान देने पर भी इसका अहित न करेगा। तीसरी खास बात है, सर्व-साधारण की आंखों में धूल झोंकना।... भला बताइये, एक भूखा मरता नीच पुरुष अगर एक परी-सी स्त्री का निरीक्षक और हजारों की संपत्ति का मालिक — दिखाऊ ही सही — बना दिया जाय तो वह ऐसे दुःख और बदनामी को क्या समझेगा ? .... यह बदमाश "पंडितजी" असल में माली था। सड़कों पर फिरता था, इस सुखवती ने भांप लिया, इसका मूल्य समझ गई और इस अद्भुत नारी ने इस नीच को आज इस आसन पर पहुंचा दिया।[139] .... बना रहे यह सुंदरलाल, इस बदमाश हब्शी की आड़ में, पता नहीं, कितने अछूते जवानों का यह नाश कर चुकी है।"[140] .... भाई साहब ऐसे-ऐसे मासूम, फूल से अबोध युवकों को इस रांड ने बर्बाद किया है कि बस पढ़कर मेरे जैसा पत्थर-दिल भी कांप उठा। मगर साहब, भयानक स्त्री है। ऐसे-ऐसे जुल्म ढा चुकी है, तो भी ज़रा-सी वेदना की छाया, अनुताप की रमक, पश्चाताप की जलन मैंने कभी इसके चेहरे पर नहीं देखी। रोज नया शिकार फांसने की फिक्र में रहती है। ऐसे-ऐसे भयानक आदमी इसके शत्रु हैं कि सरे बाजार खून कर दें और पता न लगे, मगर पता नहीं किस ~~बूत~~ बूते पर इतनी हिम्मत रखती है कि सुबह चार बजे उठकर सैर करने चल देती है और घण्टों जंगलों में फिरती रहती है।"[140]

उपन्यास के अंत में सुखवतीदेवी की हत्या को बताया गया है। देवीशरण नामक एक व्यक्ति उसकी पाशवी और अनाचारपूर्ण लीला-

औसे तंग आकर उसका गला घोंट देता है , किन्तु समाज के सामने तो वह फिर भी "देवीजी" ही बनी रहती है । हिन्दी के समस्त पत्रों में श्रीमती सुखदेवीजी का मृत्यु समाचार "आंसू भरे नेत्रों से " छापा गया और एक पत्रिका ने तो देवीजी का आकर्षक चित्र देकर नीचे लिखा — "हिन्दी की प्रसिद्ध पत्रिका ' महिला ' की ख्याति-प्राप्त , सुयोग्य संपादिका , रमणी-रत्न , भगिनी सुखवती देवीजी , जो ता0 ... को अकस्मात् छत से गिर कर स्वर्गवासिनी हुई !! "[141]

इतना ही नहीं , इस पत्रिका के संपादक ने देवीजी के साथ व्यक्तिगत संबंध बताकर , एक टिप्पणी में उनकी सच्चरित्रता और सदाशयता का खूब गुणगान किया था , और इसी अंक में एक भावुक , समाज-सुधारक कवयित्री ने देवीजी की स्मृति में एक कविता भी लिखी थी —

" हा ! लगा तीर यह आज असह्य अनोखा !
चुन लिया दैव ने रत्न सभी से चोखा !! "[142]

उपन्यास के अंत में यह वाक्य दिया है — "×इसे×रमणी×रत्न×× इस ' रमणी-रत्न ' वाले चित्र और कविता को पैरों से कुचलकर ही मैंने दम लिया । "[143] यह "मैं" याने रमेशचन्द्र त्रिपाठी जिसके द्वारा यह पूरी कथा कहलवाई गयी है ।

प्रस्तुत उपन्यास में उग्रजी ने सुखवतीदेवी के दोनों रूपों को यथार्थतः चित्रित करके यह बताने का यत्न किया है कि हमारे समाज में ऐसे पाखण्डी , व्यभिचारी तथा नीच नर-नारियों की कमी नहीं है । अभी हाल ही में द्वारका के केशवानंद स्वामी की हवस-लीला प्रकाश में आयी है । वह भी धर्म , समाजसेवा तथा शिक्षा के नाम पर छोटी-छोटी बालिकाओं को , मासूम भोली बच्चियों को फांसता था । इस कार्य के लिए उसने कन्या-पाठशाला की आचार्या तथा कन्या-छात्रालय की गृहमाता को भी फांसा था । वस्तुतः ये दोनों भी केशवानंद महाराज की रखैल जैसी-ही थीं । कुछ वर्ष पूर्व देहगाम (गुजरात) में भी एक ऐसे

महाराज निकले थे जो महिलाओं के साथ रास-लीला रचाते थे । जलगांव सेक्स-कांड में तो इलाके के राजनीतिक नेता , विधायक इत्यादि भी शामिल थे । ऐसी घटनाओं से प्रतीत होता है कि "रहस्यमयी" जैसे उपन्यास आज भी अप्रासंगिक नहीं हुए हैं ।

दिल्ली का व्यभिचार :

इस उपन्यास में भी ऋषभजी ने हमारे उच्चवर्गीय समाज में परिव्याप्त व्याभिचारिक प्रवृत्तियों को बेपर्द किया है । डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने इस उपन्यास के प्रथम संस्करण का प्रकाशन-वर्ष सन् 1938 बताया है ,[144] परंतु यह ठीक नहीं जान पड़ता है । वस्तुतः इसका प्रकाशन-काल है 1928 , पर संभवतः मुद्रण की गलती के कारण ऐसा हो गया होगा । जो भी हो इस उपन्यास में भी "रहस्यमयी" , "दिल्ली का कलंक " , "दुराचार के अड्डे " , " वेश्यापुत्र" प्रभृति उपन्यासों की भांति हमारे समाज में अन्तर्निहित दुराचार को रेखांकित करने का एक यथार्थ प्रयत्न है ।

इस उपन्यास का शिल्प भी अनूठा है । इसमें लेखक ने एक "हौआ कमिटी" का उल्लेख किया है । कई शहरों तथा नगरों में निजानंदी मस्ती तथा आनंद-प्रमोद के लिए ऐसी संस्थाएं होती है , जैसे टेम्पुआ क्लब , ठोला क्लब , मूर्ख-सम्मेलन , हुड़दंग पार्टी आदि । कुछ वर्ष पूर्व म.स. युनि. के हिन्दी विभाग के कुछ सदस्यों की भी ऐसी एक क्लब थी — "ठलुआ क्लब " । मेरे निर्देशक महोदय डा. पारूकांत देसाई भी उसके सदस्य थे । उन्होंने तो "ठलुआ-गीत" नाम से एक गीत की भी रचना की थी , जिसमें "ठलुआ" की सही पहचान को व्याख्यायित किया गया है ।[145] उपन्यास में निरूपित "हौआ कमेटी " में बारह सदस्य हैं । इस कमेटी का सभापति स्वयं लेखक है । इसके सभी सदस्य दिल्ली के नगर-जीवन की एक-एक कहानी प्रस्तुत करते हैं जिनका संबंध नगर में परिव्याप्त व्यभिचार से है । इस प्रकार इस उपन्यास में व्यभिचार से सम्बद्ध कुल बारह कहानियां वर्णित हैं , परंतु उनका वर्णन इस प्रकार हुआ

है कि उससे उपन्यास का कथापट बुनता चला गया है और उसे एक उपन्यास का रूप मिल गया है ।

समाज में व्याप्त अनैतिकता को उसके यथातथ्य रूप में प्रस्तुत करना ही मानो इस उपन्यास का एक उद्देश्य है । समाज-सुधार के लिए कई बार यह भी जरूरी हो जाता है कि उसमें व्याप्त बुराइयों और नग्नता को बेपर्द किया जाय । इसको ही मध्यकाल के भक्त "खल-निंदा" कहते थे । इस उपन्यास में लेखक की प्रवृत्ति भी इसी "खल-निंदा" की रही हैं । लेखक के मतानुसार समाज की इन व्याभिचारिक प्रवृत्तियों के मूल में हमारा पुरुष-समाज है । पुरुष जो समाज का नियंता है । पुरुष ही ने समाज के कायदे-कानून बनाये । वह विवाह करना तो अपना कर्तव्य समझता है , पर उसके उत्तरदायित्वों का निर्वाह उसे मंजूर नहीं है । वह स्त्री को पत्थर की पुतली समझता है । स्वयं उच्छृंखल जीवन व्यतीत करता है , मौज-मजे लुटता है , परंतु यह कभी सोचता भी नहीं कि स्त्री भी एक मनुष्य है , उस अभागिन को भी हृदय होता है । वह जब सीता बनती है , तो उसे भी राम की अपेक्षा रहती है । पर नहीं , पुरुष समाज को यह मंजूर नहीं । स्वयं व्यभिचारी होते हुए भी वह चाहता है कि उसकी पत्नी सती-सावित्री ही बनी रहे । पुरुष भूल जाता है कि स्त्री में भी वासना हो सकती है , वह भी उनकी तरह दूसरी जगह जाकर अपना धर्म भ्रष्ट कर सकती है ।[146]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि प्रस्तुत उपन्यास प्रेमचन्द - परंपरा से भिन्न घोर यथार्थवादी रचना है । कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से यह प्रेमचन्द-परंपरा से अलग पड़ता है । तथाकथित भद्र-वर्ग के पुरुषों को निरावरण करना ही लेखक का उद्देश्य है , और इसलिए वर्णनों में कहीं सामाजिक-सीमाओं का उल्लंघन भी हुआ है । लेखक कहीं-कहीं कलात्मक संयम चुका है , और जहां-जहां ऐसा हुआ है , वहां-वहां यह प्रतीति होती है कि लेखक औपन्यासिक कला को कहीं चूक गया है ।

राजकुमार भोज :
=============

यह लेखक का एक बाल-उपन्यास है । वस्तुतः प्रत्येक बड़े लेखक का यह कर्तव्य होता है कि वह बच्चों के साहित्य का भी सृजन करे, परंतु हमारे यहां लब्ध-प्रतिष्ठित लेखक या कवि बाल-साहित्य के निर्माण को एक हेय प्रवृत्ति समझता है । रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे बहुत कम होते हैं, जो विश्वस्तर के साहित्यकार होते हुए भी बाल-साहित्य की कृतियों को देने में गौरव का अनुभव करते हैं । हिन्दी में तो बाल-साहित्य के लेखकों की एक अलग कोटि ही निर्धारित हो गई है । यह स्वस्थ लक्षण नहीं है । सही तो यह है कि सभी बड़े लेखकों को भी इस दिशा में अग्रसरित होना चाहिए । ऋषभजी का यह प्रयास उसी दिशा की ओर संकेत करता है । अपने लेखन की प्रौढ़ावस्था में यदि वे विक्षिप्त न होते, तो शायद उन्होंने समृद्ध कहा जाये, ऐसा बाल-साहित्य दिया होता । इसकी प्रतीति हमें उनकी इस रचना से हो जाती है ।

उपन्यास सचित्र है । बाल-उपन्यास होने के कारण उसकी छपाई भी उसी प्रकार की है । बच्चों के चरित्र-विकास के लिए हमेशा ऐसे कथा-साहित्य की आवश्यकता रहती है, जो बाल-सहज कौतूहल तथा जिज्ञाशा की पूर्ति के साथ उनमें करुणा, दया, ममता, उदारता, ज्ञान-पिपासा, वीरता जैसे मानवीय गुणों का विकास करे । प्रस्तुत उपन्यास का कथा-नायक बालक भोज है जो कालांतर में बड़ा ही प्रतापी और विद्या-प्रेमी राजा होता है ।

संस्कार-नगरी धार के महाराजा सिन्धुल को उत्तरावस्था में पुत्र-रत्न की प्राप्ति होती है । महाराजा सिन्धुल और महारानी सावित्री आनंद से फूले नहीं समाते । विद्वानों, पण्डितों, ब्राह्मणों, भिक्षुओं सभी को दान से मालामाल कर दिया जाता है । कहावत है — " होनहार बिरवान के होत चिकने पात " । राजकुमार भोज एक कुशाग्र बुद्धि के बालक थे । शैशव काल से ही उनकी मेधा के प्रमाण मिलने लगते हैं, अतः एक विद्वान व सज्जन पंडित की देखरेख में कुमार

की शिक्षा का प्रबंध किया जाता है । ज्योतिषियों के द्वारा महाराज को कुमार के उज्ज्वल भविष्य का पता चलता है , साथ ही उन्हें यह भी ज्ञात होता है कि अब उनका आयुष्य बहुत कम रह गया है । अतः वे वन में जाकर साधना करना चाहते हैं । रानी सुमित्रा भी उनके साथ जाने की बात करती है , परंतु कुमार की देखरेख के लिए वे उसे साग्रह रोक लेते हैं ।

कुमार की अवस्था अभी बहुत छोटी थी , अतः वे राज्य का भार अपने छोटे भाई मुंज को सौंपना चाहते हैं । परंतु उन्हीं दिनों में उनके दरबार में एक मुकदमा आता है , जिसके कारण महाराज कुछ सशंकित हो जाते हैं । बात यह थी कि एक साधु प्रकृति का व्यक्ति अपनी सारी संपत्ति ~~अपने×अनुज×भाई~~ तथा पुत्र अपने अनुज भाई को सौंपकर वन में चला गया । कुछ वर्ष के उपरांत भाई के मन में लालच पैदा हुआ और उसने सारी संपत्ति पर कब्जा करने के लिए अपने बड़े भाई के धरोहर — उस पुत्र की हत्या कर दी । इस घटना से महाराज के मन में शंका-कुशंका के बादल घिरने लगे । अन्ततः उन्होंने अपने विश्वसनीय मंत्री बुद्धिसागर तथा पत्नी सावित्री के भरोसे बच्चेको सौंपकर भाई के चरित्र पर विश्वास करने का तय किया और स्वयं वन को चले गये ।

इधर शुरू-शुरू में तो मुंज भोज का बहुत ध्यान रखता था और उसे पुत्रवत स्नेह देता था , पर कुछ वर्षों के उपरांत उसकी नीयत में खोट आने लगी और वह भोज को मारने के उपाय सोचने लगा । एक बार तो वह कुमार को विष ही देने जा रहा था कि बुद्धिसागर ने ऐन वक्त पर वहां पहुंचकर उसे बचा लिया । मुंज के लिए मंत्री बुद्धिसागर एक समस्या बन गए थे , परंतु मुंज ने मंत्रीजी की सेवाओं और राज-भक्ति की प्रशंसा करते हुए उन्हें वृत्ति-सहित निवृत तथा उनके स्थान पर वत्सराज नामक मंत्री की नियुक्ति की घोषणा ऐसे बुद्धि-चातुर्य से की कि बुद्धिसागर कुछ कह ही नहीं पाये । वत्सराज भी बुद्धिमान और योग्य था , परंतु कुछ

भीरू प्रकृति का था ।

xxxx भोज की हत्या का काम वत्सराज को सौंपा जाता है । पहले तो वत्सराज कुछ झिझकता है , परंतु मुंज द्वारा धमकी दिए जाने पर तैयार होता है । योजना के अनुसार भोज को जंगल में ले जाकर वत्सराज उसकी हत्या करने ही वाला था कि भोज के निम्नलिखित श्लोक-संदेश से उसका हृदय परिवर्तित हो जाता है :—

"मान्धाता च महिपतिः कृतयुगा लंकार भूतो गतः
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासो दशार्स्यान्तकः
अन्य चापि युधिष्ठिर प्रभृतयोः याता दिवं भूपते
नैके नापि संम गता वसुमती नूनं त्वया यास्यति । "147

अर्थात् — " सतयुग में राजा मान्धाता बड़ा प्रतापशाली था , वह भी चला गया । त्रेतायुग में समुद्र का पुल बांधने वाला महाबली राजा रावण भी अन्त को प्राप्त हुआ । और द्वापर युग में युधिष्ठिर इत्यादि राजा भी अपनी स्मृति शेष छोड़कर चले गये । हे राजा मुंज ! पृथ्वी इनमें से किसीके xxx साथ न गई । ज्ञात होता है यह वास्तव में तेरे साथ जायेगी । " 148

उसके पश्चात् वत्सराज द्वारा भोज को सुरक्षित स्थान पर छिपा देना , शिल्पकार द्वारा बनाया भोज का नकली सिर मुंज के सामने प्रस्तुत करना , प्रजा का विद्रोह , मुंज को अपने कार्य पर पश्चत्ताप , वत्सराज का बुद्धिसागर को एकांत में मिलना , मुंज की घोषणा कि वह अपने पाप के पश्चाताप हेतु अग्नि-प्रवेश करेगा , बुद्धिसागर और वत्सराज की चातुर्यपूर्ण योजना , वत्सराज का कापालिक होकर आना , अपने चमत्कारों की घोषणा करना , कटे सिर वाले व्यक्ति को भी जीवित कर देनी की बात करना , बुद्धिसागर के साथ एकांत में स्मशान जाने की शर्त और अन्ततः गुप्त स्थान से भोज को लाकर राजा के सामने प्रस्तुत करना जैसी घटनाएं वर्णित की गई हैं ।

उपन्यास के अन्त में "उपसंहार" के अन्तर्गत लेखक ने कहा है — "इसके बाद दूसरे दिन मुंज ने अपने हाथ से भोज को राज-मुकुट पहनाया । अपने पुत्रों को एक-एक गांव देकर भोज की अधीनता में नियुक्त किया । इसके पश्चात् मंत्री बुद्धिसागर , वत्सराज , मुंज और उसकी रानियां तथा महारानी सावित्री तपस्या करने के लिए वन में चले गये । ... महाराज भोज ने बहुत दिनों तक राज्य भोगा । भोज बड़ा ही प्रतापी और विद्या-प्रेमी राजा हुआ है । प्रकाण्ड विद्वान कालिदास इसकी सभा के नवरत्नों अर्थात् नौ प्रधान विद्वानों में से एक था । " [149]

उपन्यास की भाषा सरल है , सीधी और सुबोध है , क्योंकि यह उपन्यास बच्चों के लिए लिखा गया है यह प्रारंभ में ही निर्दिष्ट किया जा चुका है ।

"पैसे का साथी " , "वेश्यापुत्र" , "मास्टर साहब " प्रभृति उपन्यासों में भी ऋषभजी ने हमारे तथाकथित भद्र-वर्ग को निरावरण करने का उपक्रम किया है । इनके अतिरिक्त एलेक्जेण्डर ड्यूमा तथा टॉल्स्टॉय की कुछ कृतियों का अनुवाद भी वे कर चुके हैं , जिसके संबंध में पूर्ववर्ती पृष्ठों में बताया जा चुका है ।

अध्याय के विहंगावलोकन से हम निम्नलिखित तथ्यों तक पहुंच सकते हैं —

§1§ ऋषभजी के उपन्यासों को हम मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं — प्रेमचन्द स्कूल के उपन्यास और उग्र-स्कूल के उपन्यास । कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से उनके "भाई" , "सत्याग्रह" , मन्दिर-दीप" , "गदर " प्रभृति उपन्यास प्रेमचन्द-परंपरा से प्रभावित लगते हैं ; तो "दिल्ली का व्यभिचार" , "दिल्ली का कलंक" , "दुराचार के अड्डे " , "जनानी सवारियां" , "तीन इक्के" प्रभृति उपन्यासों को उग्रशैली के उपन्यास कह सकते हैं । ऐसा लगता है कि आरंभ में उन्होंने प्रेमचन्द का अनुसरण किया , परंतु बाद में वे उग्र-धारा की ओर चले गये । इनकी शिल्पविधि में भी ये दोनों प्रभाव

स्पष्टतया लक्षित होते हैं । आरंभिक उपन्यासों में उन्होंने मर्यादित कथानक , स्वस्थ पात्र , शिष्ट भाषा और आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी दृष्टिकोण अंगीकृत किया है । किन्तु बाद में वे अमर्यादित कथानक , अस्वस्थ पात्रों , अतियथार्थ से प्रभावित रसमय या रसात्मक शैली को प्रश्रय देते गये हैं ।

§2§ प्रेमचन्द के उपन्यासों में हमें ग्रामीण जीवन के विभिन्न स्तर मिलते हैं । निम्न-मध्यवर्गीय लोगों के जीवन की विभीषिकाएं वहां प्रत्यक्ष हुई है । ऋषभजी ने कई उपन्यासों में उन लोगों के जीवन की रंग-रेलियां और विलासिता को चित्रित किया है जिनके रहते गरीबों की वह दशा हुई है । अतः एक प्रकार से ऋषभजी ने प्रेमचन्दकाल के लेखन की एक छूटती कड़ी को जोड़ने का काम किया है । ऐसे उपन्यासों में हम "मयखाना" , "तीन इक्के" , "हिज हाइनेस " , " हर हाइनेस " आदि को ले सकते हैं ।

§3§ वर्ण्य-विषय की दृष्टि से हम ऋषभजी के उपन्यासों को सामाजिक , ऐतिहासिक व राजनीतिक कह सकते हैं । "भाग्य" , "भाई", "रहस्यमयी" ,"मन्दिर-दीप"आदि उपन्यासों के कथानक सामाजिक हैं । "गदर" ऐतिहासिक उपन्यास है । इसमें लेखक की ऐतिहासिक सूझ-बूझ के दर्शन होते हैं । उपन्यास के अनुशीलन से प्रतीत होता है कि उसका लेखक लेखन के पूर्व शोध की प्रक्रिया से गुजरा है । "सत्याग्रह" का वस्तु राज-नीतिक उपन्यासों का-सा है । ऐतिहासिक व राजनीतिक उपन्यासों में लेखक ने स्वस्थ कथानक अपनाए हैं और उनमें समकालीन राजनीतिक गतिविधियों का सुंदर व कलात्मक निरूपण भी हुआ है । सामाजिक उपन्यासों में सामाजिक व्यभिचार , अनीतियों तथा कुत्सित प्रवृत्तियों का अतियथार्थवादी दृष्टिकोण से निरूपण हुआ है ।

§4§ ऋषभजी के अतियथार्थवादी दृष्टिकोण से प्रेरित उपन्यासों के पात्र मानसिक दृष्टया रुग्ण और अस्वस्थ दिखते हैं । वे स्वयं भी पतन की गर्त में गिरते हैं और दूसरों को भी गिराते हैं । उनके सामने

जीवन का कोई महती या विराट लक्ष्य नहीं है । भोगवादी प्रकृति के होने के कारण वे छल-कपट तथा वासना में लिप्त रहते हैं । उपन्यासकार ने उनका चित्रण प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष दोनों विधियों से किया है ।

§5§ ऋषभजी में जैनेन्द्र-शैली की विश्लेषणवादी प्रवृत्ति के भी दर्शन होते हैं । "तपोभूमि" , "मन्दिर-दीप" , "रहस्यमयी" , "तीन इक्के" तथा "चम्पाकली" प्रभृति उपन्यासों में हमें पात्रों के मानसिक द्वन्द्व आदि मिलते हैं जिसमें लेखक ने मनोविश्लेषणवादी शैली का अनुसरण किया है ।

§6§ ऋषभजी के उपन्यासों की कथन-रीति में हमें वैविध्यात्मक प्रयोगशीलता के दर्शन होते हैं । "भाई" , "भाग्य" , "चम्पाकली" जैसे उपन्यासों में जहां प्रेमचन्दीय वर्णनात्मक कथन-रीति को लिया गया है ; वहां "हिज हाइनेस " "रहस्यमयी" , "मयखाना" प्रभृति उपन्यासों में आत्मकथनात्मक कथन-रीति का प्रश्रय लिया गया है । "हिज हाइनेस" की कथन-रीति आत्मकथनात्मकता में भी थोड़ी भिन्न पड़ती है । उसमें सभी प्रमुख पात्र क्रमशः पांच दौर में अपनी-अपनी बात प्रकट करते हैं । "रहस्यमयी" में जिस पात्र के द्वारा कथा कहलवायी गई है वह पात्र मुख्य न होकर गौण है । "तपोभूमि" में सहलेखन का प्रयोग तो है ही , साथ ही पात्रात्मक पद्धति का निर्वाह किया गया है । "दिल्ली का व्यभिचार " में "हौआ कमैटी" के सदस्य एक-एक कथा कहते हैं और उन सबकी कथा उपन्यास के कथापट को बुनने का कार्य करती हैं । "जनानी सवारियां" में प्रत्येक प्रकरण की कहानी अलगहै । उन्हें स्वतंत्र कहानियों के रूप में भी पढ़ा जा सकता है , परंतु ये सारी कहानियां रामजीदास नामक एक चरित्र से जुड़कर उसे उपन्यास का रूप देती हैं ।

§7§ ऋषभजी के उपन्यासों में संवादों की चुस्ती विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक तथा पंडित बालकृष्ण भट्ट की का स्मरण दिला जाती है । वे छोटे-छोटे , मार्मिक तथा भावपूर्ण संवादों की सृष्टि में अति निपुण हैं । संवाद सार्थक होते हैं , उनसे कथानक को गति प्राप्त होती है या

किसीके चरित्र पर प्रकाश पड़ता है । उनके संवादों की भाषा ही नहीं उनमें अभिव्यक्त विचार भी पात्रानुकूल हैं । वे लेखक के दृष्टिकोण को भी अभिव्यक्ति देते हैं ।

§8§ ऋषभजी की भाषाशैली में रोचकता, मौलिकता, सजीवता, व्यंग्यात्मकता आदि गुण मिलते हैं । उसमें प्रवाह होता है । पाठकों को अपने साथ बहा ले जाने की क्षमता उसमें होती है । आवश्यकतानुसार अरबी-फारसी या उर्दू शब्दों और जुम्लों का प्रयोग लेखक ने किया है । कहावतों और मुहावरों का प्रयोग भी मिलता है, जिससे लेखक का भाषा पर जो अधिकार है वह लक्षित होता है ।

§9§ "रहस्यमयी" तथा "दुराचार के अड्डे" जैसे उपन्यासों में लेखक समाज में व्याप्त अनैतिकता का चित्रण करते हैं, परंतु कहीं-कहीं ऐसा प्रतीत होता है कि इन वर्णनों में लेखक स्वयं चटखारे ले रहा है । फलतः ऐसे स्थानों में अश्लीलता का समावेश हो गया है, जो पाठकों की चित्त-वृत्तियों पर भी बुरा प्रभाव छोड़ सकता है । इसे हिन्दी साहित्य के लिए एक विडम्बनापूर्ण स्थिति ही कह सकते हैं कि "भाई", "सत्याग्रह", "गदर", "तपोभूमि" जैसे उपन्यासों का निर्माता "रहस्यमयी", "दुराचार के अड्डे" या "दिल्ली का व्यभिचार" जैसी औपन्यासिक कृतियों के सृजन में अपनी कला को सार्थक समझने लगा ।

§10§ कालक्रम की दृष्टि से ऋषभजी के उपन्यासों को दो विभागों में रख सकते हैं — 1. प्रेमचन्दयुग के उपन्यास, यथा — "भाग्य", "मन्दिर-दीप", "तपोभूमि", "भाई" आदि । और 2. प्रेमचन्दोत्तर-युग के उपन्यास, यथा — "चम्पाकली", "हिज हाइनेस", "हर-हाइनेस", "मयखाना", "तीन इक्के" आदि ।

§11§ ऋषभजी ने बाल-साहित्य के क्षेत्र में भी "राजकुमार भोज" जैसी रचना देकर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है ।

§12§ अनूदित उपन्यासों के क्षेत्र में भी ऋषभजी का विशेष योगदान रहा है । उन्होंने ड्यूमा तथा टॉल्स्टोय की रचनाओं के अनुवाद प्रस्तुत किए हैं । ऐसी औपन्यासिक कृतियों में "कैदी" , "कण्ठ-हार" , "महापाप" और "देवदूत" आदि मुख्य हैं ।

§13§ ऋषभजी की कुछेक रचनाओं में हिन्दी आलोचकों को [150] प्रकृतवादी दृष्टिकोण नज़र आता है , परंतु यहां यह ध्यातव्य होगा कि उग्र , चतुरसेन शास्त्री तथा ऋषभचरण जैन आदि की औपन्यासिक कृतियों में यत्र-तत्र केवल प्रकृतवादी दृष्टिकोण का प्रभाव ही परिलक्षित होता है । प्रकृतवाद की केवल दो ही बातें उन्होंने अंगीकृत की हैं -- 1. विषय का चयन और 2. शैली । प्रकृतवादियों की भांति ये लेखक भी समाज के निकृष्ट अंगों को देखते हैं और उनकी शैली में भी प्रकृतवादियों का खुलापन मिलता है । इन दो बातों के अतिरिक्त अन्य तमाम बातों में वे प्रकृतवादियों से भिन्न कोटि में पड़ते हैं । वे मानव-जीवन का वैज्ञानिक अध्ययन नहीं करते । दूसरे जीवन के निकृष्ट अंगों के प्रति वे अनालोचनात्मक नहीं होते । संक्षेप में ऋषभजी के औपन्यासिक लेखन में हमें अनेक-स्तरीयता के दर्शन होते हैं ।

======= XXXXXX =======

:: सन्दर्भानुक्रम ::

§1§ हिन्दी साहित्यकोश : भाग-1 : पृ. 153 ।

§2§ होरी /गोदान:प्रेमचन्द/; काली / धरती धन न अपना : जगदीश-चन्द्र / ; डुंगरसिंह /हौलदार:शैलेश मटियानी/ ; हसनअली /पत्थर-अल-पत्थर : उपेन्द्रनाथ अश्क / ; चनुली / एक टुकड़ा इतिहास : गोपाल उपाध्याय / ; चम्पाकली / ऋषभचरण जैन : चम्पाकली / ।

§3§आधुनिक साहित्य : आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी : पृ. 173 ।

§4§ हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : पृ. 513 ।

§5§ मयखाना : ऋषभचरण जैन : मेरी राय में : पृ. 6 ।

§6§ से §8§ : वही : पृ. क्रमशः 9 , 13-14 , 14 ।

§9§ कलम का सिपाही : अमृतराय : पृ.25 ।

§10§ हिज हाइनेस : प्रवचन /भूमिका/ : पृ.6 ।

§11§ द्रष्टव्य : इमरतिया : नागार्जुन ।

§12§ हिज हाइनेस : प्रवचन /भूमिका/ : पृ.6 ।

§13§ " हिन्दी उपन्यास : प्रेमचन्दोत्तरकाल " : डा. रामशोभित-प्रसाद सिंह : पृ.47 ।

§14§ इरोटिक आर्ट आफ इण्डिया : फिलिप रासन : सी -प्लेट नं.2 ।

§15§ जनजातीय जीवन और संस्कृति : डा. राजीवलोचन शर्मा : पृ.136 ।

§16§ हिज हाइनेस : पृ. 59-60 ।

§17 से 19 § : वही : पृ. क्रमशः 11, 153 , 191-192 ।

§20§ तीन इक्के : ऋषभचरण जैन : भूमिका ।

§21§ से §26§ : वही : पृ. क्रमशः भूमिका , 24 ,25,30-31,66-67 , 96 ।

§27§ प्रेमचन्द-युग का हिन्दी उपन्यास : डा. मोहनलाल रत्नाकर : पृ.81

§28§"हिन्दी उपन्यास : प्रेमचन्दोत्तरकाल " : पृ. 58 ।

§29§ हर हाइनेस : पृ. 58 । §30§ वही : पृ. 112 ।

§31§ द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास कोश : खण्ड-2 : डा. गोपालराय पृ. 471 ।

§32§ हिन्दी उपन्यास साहित्य का शास्त्रीय विवेचन : डा. श्रीनारायण अग्निहोत्री : पृ. 185 ।

§33§ द्रष्टव्य : युगनिर्माता प्रेमचन्द तथा कुछ अन्य निबंध : डा. पारूकांत देसाई : पृ. 31 ।

§34§ सन् 1937 के मूल संस्करण की भूमिका से ।

§35§ चम्पाकली : ऋषभचरण जैन : पृ. 114 ।

§36§ वही : पृ. 60 ।

§37§ "महाराव लखपतसिंह : व्यक्तित्व एवं कृतित्व " : डा. के.एम. शाह : भूमिका से ।

§38§ द्रष्टव्य : चम्पाकली : पृ. 14 ।

§39§ से §42§ : वही : पृ. क्रमशः 77, 29, 61, 30-31 ।

§43§ " एन इनट्रडक्शन टु द स्टडी आफ लिटरेचर " : हडसन : पृ. 144 ।

§44§ गांव में गर्मी के दिनों में पिछली रात को ढोरों को चराने के लिए ले जाते हैं , जिसे "पसर" कहा जाता है । : द्रष्टव्य : भाई : ऋषभचरण जैन : पृ. 88 ।

§45§ से §53§ : भाई : पृ. क्रमशः 103, 103, 103, 103, भूमिका , 30, 31, 60, भूमिका ।

§54§ प्रेमचन्द-युग का हिन्दी उपन्यास : पृ. 83 ।

§55§ भाई : पृ. 32-33 ।

§56§ "संभोग से समाधि की ओर " : प्रवचन-9 : सं. 1993 ।

§57§ भाई : पृ. 60 ।

§58§ से §60§ : वही : पृ. क्रमशः 20, 27, 30 ।

§61§ जनानी सवारियां : ऋषभचरण जैन : "फ्लेप" पर प्रकाशित लेखकीय वक्तव्य ।

§62§ द्रष्टव्य : जनानी सवारियां : पृ. 23-32 ।

§62§ द्रष्टव्य : धर्मयुग : जलगांव कांड विशेषांक : अक्तूबर : 1994 ।

§64§ से §73§ : जनानी सवारियां : पृ. क्रमशः 36-37, 46 , 48 , 73, 89 , 97 , 97 , 98 , 102 , 105 ।

§74§ द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव : डा. भारतभूषण अगवाल : प. 69 ।

§75§ प्रेमचन्द-युग का हिन्दी उपन्यास : पृ. 148-149 ।

§76§ द्रष्टव्य : इ़श्रश्र× गदर : ऋषभचरण जैन : पृ. 18 ।

§77-78§ : वही : पृ. क्रमशः 14 , 19-20 ।

§79§ द्रष्टव्य : गदर : पृ. 19 ।

§80-90§ : वही : पृ. क्रमशः 6, 6, 47, 48, 48, 49, 49-50, 50, 55, 87-88, 91 ।

§91§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 87 ।

§92§ इण्डियास क्वेस्ट : पंडित जवाहरलाल नेहरू : पृ. 188 ।

§93§ लेख : "संस्कृति-पीठ : उत्तर-प्रदेश " : भिक्खु : नवभारत टाइम्स : दिनांक : 3-6-93 : पृ. 4 ।

§94§ सत्याग्रह : ऋषभचरण जैन : पृ. 15 ।

§95-96§ : वही : पृ. क्रमशः 28 , 13 ।

§97§ जो मजदूर नेटाल जाते हैं , वे एग्रीमेण्ट में आये हुए या गिरमिटिया कहलाते हैं । : द्रष्टव्य : सत्याग्रह : पृ. 9 ।

§98§ सत्याग्रह : पृ. 74 ।

§99§ प्रेमचन्द-युग का हिन्दी उपन्यास : पृ. 141 ।

§100§ मन्दिर-दीप : ऋषभचरण जैन : पृ. 13 ।

§101-109 § : वही : पृ. क्रमशः 12 , 167 , 180 , 274 , 144 , 24 , 25 , 25 , 80 ।

§110§ प्रेमचन्द-युग का हिन्दी उपन्यास : पृ. 90 ।

§111§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 93 ।

§112§ तपोभूमि : ऋषभचरण-जैनेन्द्र : भूमिका-अपनी बात ।

§113§ द्रष्टव्य : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डा. पारूकांत देसाई : पृ. 155 ।

§114§ प्रेमचन्द-युग का हिन्दी उपन्यास : पृ. 93 ।

§115§ तपोभूमि : पृ. 104 ।

§116-119§ : वही : पृ. क्रमशः 28 , 143-144 , 195 , 196 ।

§120§ प्रेमचन्द-युग का हिन्दी उपन्यास : पृ. 92 ।

{121} अभिनव सूक्ति-कोश : शरण : पृ. 279 ।

{122} द्रष्टव्य : " साहित्यिक सुभाषित कोश " : डा. हरिवंशराय शर्मा : पृ. 443 ।

{123} द्रष्टव्य : अभिनव सूक्ति-कोश : शरण : पृ. 279 ।

{124} रामधारीसिंह दिनकर : अभिनव सूक्ति-कोश : पृ. 279 ।

{125} भगवान बुद्ध : उद्धरण-कोश : डा. भोलानाथ तिवारी : पृ. 323 ।

{126} वाल्मीकि : वही : पृ. 323 ।

{127} मानसमाला : डा. पारूकांत देसाई : पृ. 42 ।

{128} भाग्य : ऋषभचरण जैन : पृ. 9 ।

{129-130} : वही : पृ. क्रमशः 98-99 , 99 ।

{131} प्रेमचन्द-युग का हिन्दी उपन्यास : पृ. 88 ।

{132} युगनिर्माता प्रेमचन्द तथा कुछ अन्य निबंध : डा. पारूकांत देसाई : पृ. 27-28 ।

{133} हिन्दी उपन्यास-कोश : खण्ड-2 : पृ. 471 ।

{134} डा. प्रतापनारायण टण्डन द्वारा उद्धृत : " हिन्दी उपन्यास में कथा-शिल्प का विकास " : पृ. 272 ।

{135} रहस्यमयी : ऋषभचरण जैन : आरंभिक से ।

{136} वही : पृ. 66 ।

{137} द्रष्टव्य : "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई " : पृ. 39 ।

{138} द्रष्टव्य : एन एबीजेड आफ लव : इंगे एण्ड स्टेन हेगेलर : पृ. 258 ।

{139} रहस्यमयी : पृ. 68-69 ।

{140-143} : वही : पृ. क्रमशः 67 , 122 , 122 , 122 ।

{144} हिन्दी पुस्तक साहित्य : पृ. 289 ।

{145} द्रष्टव्य : मिलन के क्षण चार : गीत-संग्रह : डा. पारूकांत देसाई : पृ. 63 ।

{146} द्रष्टव्य : दिल्ली का व्यभिचार : पृ. 22 ।

{147-149} राजकुमार भोज : पृ. क्रमशः 45 , 45 , 64 ।

{150} डा. त्रिभुवनसिंह , डा. कृष्णलाल आदि : द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद तथा हिन्दी साहित्य का विकास : पृ. क्रमशः 301 , 297 ।